श्री वनमाली

श्री भागवत-दर्शन :—

भागवती कथा

(छप्पनवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन भवन

प्रतिष्ठानपुर (झूसी), प्रयाग

संशोधित मूल्य २-०- रुपया

प्रथम संस्करण] माघ सम्वत् २०१० वि० [मूल्य १।)

मुद्रक—भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग ।

भागवती कथा खण्ड ५६

(विषय-सूची)

गो सेवा व्रत

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

(महा० अनु० ८०४)

सोरठा

कर्यो श्याम जिनि नेह, लोक मातु अति विमल शुचि।
जिनि तनु सब सुरगेह, तिनि सुरभिनि वन्दन करूँ॥
गैयनि में अति प्रीति, गैयनि में ई नित वसूँ।
गाऊँ गैयनि गीति, गैयनिकूँ सरबसु गनूँ॥

उपनिषद की एक कथा है। सत्यकाम नाम का एक बालक था। घर में उसकी अकेली माता ही थी। जब उसकी अवस्था १२ वर्ष की होगयी तब उसने जाकर अपनी जननी से कहा—"माँ, अब मैं १२ वर्ष का हो गया हूँ, अब मुझे गुरु के समीप गुरुकुल मे वास करके वेदाध्ययन करना चाहिए।"

मैं चलूँ लेटूँ बैठूँ या जो भी कार्य करूँ तभी मेरे आगे गैयाँ रहें, पीछे भी मेरे गैयाँ रहें। चारों ओर से मैं गैयों से ही घिरा रहूँ। यहाँ तक कि मैं सदा गौओं के ही बीच में निवास करूँ।

माँ ने कहा—"अच्छा, बेटा ! जाओ। तुम्हारा मंगल हो।"
सत्यकाम ने कहा—"किन्तु माँ, गुरु मुझसे मेरा गोत्र पूछेंगे
मैं क्या बताऊँगा। मुझे अपने गोत्र का तो ज्ञान ही नहीं, मा
मेरा गोत्र बतादो।"

माता ने कहा—"बेटा ! गोत्र का तो मुझे भी पता
मैं सेवा मे सदा तत्पर रहती थी। युवावस्था मे तू पैदा हु
संकोच वश मैं तेरे पिता से गोत्र न पूछ सकी।"

माँ की बात सुनकर सत्यकाम हारिद्रुमत ऋषि के
वेदाध्ययन के उद्देश्य से गया। उन्हे प्रणाम करके वह
पूर्वक उनकी आज्ञा से बैठ गया।

गुरु ने पूछा—"बालक ! तुम क्या चाहते हो ?"
सत्यकाम ने कहा—"भगवन् ! मैं आपके चरणों मे रह कर
वेदाध्ययन करना चाहता हूँ।"

गुरु ने पूछा—"तुम्हारा गोत्र क्या है ?"

सत्यकाम बोला—"भगवन्, मैंने अपनी माँ से अपने गोत्र के
सम्बन्ध मे पूछा था। उसने कहा—मैं सदा सर्वदा आगत
अतिथि अभ्यागतो की सेवा मे संलग्न रहती थी। युवावस्था मे
तू उत्पन्न हुआ। मैं कह नहीं सकती तेरे पिता का कौन गोत्र है
मैं इतना ही जानती हूँ, तेरा नाम सत्यकाम है और तू मुझ
जबाला का पुत्र है।"

यह सुनकर महर्षि अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले—'बेटा !
निश्चय ही तू ब्राह्मण है क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त इतनी सत्य
बात कोई नहीं कह सकता, तू समिधा ले आ मैं तेरा उपनयन
करूँगा। तू आज से सत्यकाम जाबाल के नाम से प्रसिद्ध होगा।"

गुरु ने शिष्य का उपनयन किया। उन दिनों रुपये पैसे को
बड़ा धन नहीं माना जाता। उन दिनों गौ को ही धन माना जाता

।, जिसके यहाँ जितना ही अधिक गोधन होता वह उतना ही
डा श्रेष्ठ माना जाता।

दान, धर्म, पारितोषिक, शास्त्रार्थ, यज्ञ तथा सभी देवपित्र
था ऋषि के ऋण में गो ही दी जाती थी, उपनिषदों में ऐसी
नेकों कथायें हैं, अमुक राजा ने मुनियों से कोई प्रश्न पूछा—
ौर उसमें यही पारितोषिक रखा कि जो इस प्रश्न का उत्तर
वह इतनी लाख गौएं पावे। अमुक ऋषि आए उन्होंने अपने
ष्यों से कहा—"इन गौओं को हॉक ले चलो।" साराश यही
, सभी राजाओं ऋषिओं, तथा कृषकों के यहाँ सहस्रों लक्षों
एँ रहती थीं।

ऋषियों के समीप जो शिष्य शिक्षा प्राप्त करने आते थे
के लिये सर्वप्रथम यही शिक्षा दी जाती थी कि वे गौ
वा व्रत लें, गौओं की सेवा सुश्रूषा से स्वतः ही उन्हें सर्व शास्त्र
ा जाते थे।

महर्षि हारिद्रुमत के यहाँ भी सहस्रों गौएँ थीं। सत्यकाम
ाबाल का जब उपनयन संस्कार होगया, तब वे उसे लेकर अपने
ौओं के गोष्ट में गये। सहस्रों सुन्दर दुधार गौओं में से मुनिने
ार सौ दुबली पतली गौएँ छाँटीं और सत्यकाम से बोले-
बेटा! तू इन गौओं के पीछे पीछे जा। और इन्हें चराकर
ुष्ट कर ला।"

बारह वर्ष का सत्यकाम गुरु के भाव को समझकर बोला—
'भगवन्! मैं इन गौओं को लेकर जाता हूँ और जब तक ये एक
हस्र न हो जॉयगी तब तक मैं लौटकर न आऊँगा।"

गुरुने कहा—"तथास्तु।"

सत्यकाम उन गौओं को लेकर ऐसे वन में गया जहाँ हरी-हरी
ूब थी, जलका सुपास था और जहाँ जंगली जीवों का कोई
ाय नहीं था। वह गौओं के ही बीच में रहता, उनकी सेवा

सुश्रूषा करता, वनके सभी क्लेशों को सहता, गौके दुग्ध पर ही रहता, उसने अपने जीवन को गौओं के जीवन में तदाकार कर दिया। वह गौ सेवा में ऐसा तल्लीन हो गया कि उसे पता ही न चला कि गौएँ कितनी हो गयीं हैं।

तब वायुदेवने वृषभ रूप रखकर सत्यकाम से कहा-"ब्रह्मचारिन्! हम अब सहस्र होगये हैं तुम हमें आचार्य के घर ले चलो और तुम्हें मैं एक पादब्रह्म का उपदेश करूँगा।"

यह कहकर धर्मरूपी वृषभ ने सत्यकाम को एक पाद ब्रह्म का उपदेश दिया। गुरु के गृह से वन दूर था। चार दिन का मार्ग था। इसलिये मार्ग मे जहाँ वह ठहरा वहीं उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश मिला। इस प्रकार एक पाद वृषभ ने दुसरा पाद अग्नि ने, तीसरा पाद हंसने और चौथे पाद का उपदेश मद्गु नामक जलचर पक्षी ने किया। गौओं की निष्काम सेवा सुश्रूषा से वह परम तेजस्वी ब्रह्मज्ञानी हो गया था।

एक सहस्र गौओं को ले जाकर गुरु के सम्मुख प्रस्तुत किया और उनके चरणों मे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। गुरु ने उसके मुखको ब्राह्मी श्री से देदीप्यमान देखकर अत्यन्त ही प्रसन्नता से कहा—"बेटा सत्यकाम। तेरे मुखमंडल को देखकर तो मुझे ऐसा लगता है तुझे ब्रह्मज्ञान होगया है, तू सत्य सत्य बता तुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश किसने किया ?"

सत्यकामने अत्यन्त विनीत भाव से कहा—"गुरुदेव! आप की कृपा से ही सबकुछ हो सकता है। आप मुझे उपदेश करेंगे तभी मैं उसे पूर्ण समझूँगा।"

वही ज्ञान गुरु ने दुहरा दिया सत्यकाम पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हो गये।

(२)

वेद शास्त्र पुराण तथा उपनिषदों में ऐसी अनेकों कथायें

आती हैं कि गौ सेवासे समस्त अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। गुरु के समीप समिधा लेकर नम्रता के साथ शिष्य शिक्षा के निमित्त जाता था तो गुरु सबसे प्रथम उसे गो-परिचर्या का ही काम सौंपते थे। बड़े-बड़े ऋषिकुमार बड़े-बड़े सम्राटों के राजपुत्र बड़ी श्रद्धा भक्ति से गौ माता की सेवा करते थे, उन्हें वन में चराने ले जाते थे इसी से वे इतने तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी प्रभा और कान्तियुक्त होते थे। गौओं की निष्काम सेवा से सभी कुछ प्राप्त हो सकता है, महाराज दिलीपने गौ सेवा करके ही रघु जैसे तेजस्वी, यशस्वी, पुण्यश्लोक पुत्र प्राप्त किया। जिनके नाम से समस्त कुल रघुवंशी कहलाया और जिस कुल में पुराण पुरुषोत्तम भगवान जानकी ने अवतार धारण किया।

गौओं की सेवा करके ही तो आनंद-कंद ब्रज-जीवन-धन श्री कृष्णचन्द्र गोपाल कहलाये। गो-सेवा-व्रत से ही तो सुरभि ने भगवान को गोविन्द की पदवी दी।

(३)

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में राजा ऋतंभर की एक कथा है। राजा के कोई सतान नहीं थी। जावलि मुनि ने उन्हें उपदेश दिया "राजन्! यदि आप पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं तो गो सेवा व्रत करें, गौ माता की कृपा से आपके संतान हो जायगी।"

राजा ने पूछा—"भगवन्! गौ सेवा व्रत में क्या-क्या करना होता है?" मुनि ने कहा—"गौ सेवा व्रती को अपने हाथों गौ की सेवा करनी चाहिए। स्वयं उसे चराने वन ले जाना चाहिए। गौ को जौ खिलाकर फिर उसके गोबर में जौ के जो दाने निकलें उन्हें ही खाना चाहिए। गौ के खाने पर खाना चाहिए। गौके पानी भी पी लेने पर पानी पीना चाहिए। गौओं में ही निरन्तर रहना चाहिए। गौ को ऊँची जगह बिठाकर स्वयं नीचे बैठना चाहिए।

उसके डांस मच्छर उड़ाते रहना चाहिए, उसके लिए स्वयं घास लाकर खिलाना चाहिए। सारांश अपने जीवन को गौ के जीवन में तन्मय कर देना चाहिये। पुत्रार्थी राजा ऋतंभर ने मुनि की आज्ञा से यही व्रत किया और उन्हे पुत्र की प्राप्ति हुई। पुत्र की प्राप्ति तो एक साधारण बात है गो सेवा से तो ब्रह्मज्ञान तक की प्राप्ति होती है। इसके लिये सत्यकाम जाबालकी कथा हम पीछे कह ही चुके हैं, आज हम दूध तो पीना चाहते हैं किन्तु गौ सेवा नहीं करना चाहते, इसीसे हमारी ऐसी दुर्दशा हो रही है।

(४)

कौन ऐसा हिन्दू होगा जो भारत से गोवध बन्द कराना न चाहता हो, मुझे भली भाँति यह स्मरण है कांग्रेस का स्वराज्य प्राप्ति के साथ गोवध बन्द कराना प्रधान उद्देश्य था, हम लोग जो धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग कांग्रेस के आन्दोलन में सम्मिलित हुए वह इसी उद्देश्य से कि अंग्रेजो के चले जाने के पश्चात, रामराज, होगा और उसमे गोवध तो कभी होगा ही नहीं। उस समय के महात्मा गाधीजो के वा० राजेन्द्र प्रसाद जी के गौ रक्षा के ऊपर भाषण पढ़िय। तो मेरी बात में तनिक भी अतिशयोक्ति प्रतीत न होगी। मैं इन भाषणों के उद्धरण दे सकता हूँ, किन्तु स्थल संकोच से नहीं देता। वे व्याख्यान प्रकाशित हैं, महात्मा गाधी जी ने यहाँ तक कहा था–मैं गो रक्षा के प्रश्न को कई बातों मे स्वराज्य के प्रश्न से भी बडा मानता हूँ राजेन्द्र बाबू ने अपने एक भाषण मे कहा—कि हिन्दुस्तान में गायों के लिए इस तरह की धार्मिक भावना हो कि उन्हें मारना लोग पसन्द नहीं कर सकते, इसलिये यह जो बहादुरी की सलाह दी जाती है जितने खराब जानवर हैं उनको कत्ल कर दिया जाय, मैं समझता हूँ इसमें बहादुरी है बुद्धि नहीं। यदि हम इस काम को करना चाहेंगे तो सुधार तो नहीं होगा उल्टे हम

अपने खिलाफ एक जमात पैदा करलेंगे जा हमारा विरोध करगी।

मेरा कहने का अभिप्राय इतना ही है कि स्वराज्य के पूर्व काइ कल्पना भी नहीं कर सकता था कि स्वराज्य प्राप्त होने पर भा भारत मे गोवध बन्द न होगा। सन् २१ के आन्दोलन में मुसलमानो के बडे-बडे मौलाना और मौलविओं ने स्पष्ट शब्दो में व्यवस्था दे दी थी कि गौ का बलिदान 'सरह' मे आवश्यक नहीं। इसी प्रकार की एक घोपणा निजाम सरकार की ओर से भी निकलती थी। उस आन्दोलन में मैंने स्वय मुसलमानों के साथ काम किया, उनकी मसजिदों मे और उपासना-स्थलो मे गया, वहॉ व्याख्यान दिया, मेरे कइ मित्र मुसलमान भाइयों ने तो एक गोरक्षा मडली बना ली थी, वे ढोलक करताल लेकर गाँव-गॉव गोरक्षा के गीत गा-गा कर ग्रामीणो को अत्यन्त प्रभावित करते थे। बुलन्दशहर जिले मे बसी बुगरासी के पठान बड़े प्रसिद्ध हैं। उन्हीं का यह मण्डली थी। मैं भी कई दिनों तक उनके साथ रहा, हम जब गो वध बन्दी के लिए अत्यन्त अधीर हो उठते तो हमारे कांग्रेसी नेता कहते, हत्या की जड तो अँग्रेज ही हैं इन्हें ही अपनी गोरी फौजों को खिलाने को गो मास चाहिये, इसीलिये हम हिन्दू मुसलमानो को लडाने को इन्होंने धार्मिक प्रश्न बना दिया है। अग्रेजो को भारत से जाने तो दो, एक दिन मे ये गोवध बन्द हो जायगी। एक कलम के नोक का काम है, जिस दिन स्वराज्य हुआ हम पूर्ण आशा थी कि स्वराज्य की घोपणा के साथ ही गोवध बन्दी की घोपणा भी होगी, किन्तु वह नहीं हुई।

इस पर लोगो को बड़ा आश्चर्य हुआ, कुछ को क्षोभ भी हुआ। सरकार ने भी एक कमेटी बिठाकर पूर्ण गोवध बन्दी के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। हमने सोचा—"हमारी कांग्रेसी सरकार की अभी मुस्लिम तुष्टि की नीति गयी नहीं है, वह सीधे

से न कहकर घुमा फिराकर बन्द करेगी। हमें तो आम खाने से काम, पेड गिनने से क्या प्रयोजन। गोवध बन्द होना चाहिए कैसे भी हो। सभी प्रान्त के शासकों और अधिकारियों को भी विश्वास हो गया था, अब गोवध न होगा। कई सरकारों ने कानून तो नहीं बनाये किन्तु गुप्त रूप से डाक्टरों को आज्ञा दे दी कि एक भी गौ को कटने के लिये अनुमति मत दो। हमारे ही प्रान्त मे लगभग दो वर्ष गौवध कानून से नहीं सरकारी आदेशों से सर्वथा बन्द रहा। और जहाँ गो मास मिला उन्हें पकडा गया। कुछ प्रान्तों ने, नगरपालिकाओं ने नियम भी बना दिये कि हमारी सीमा मे सर्वथा गो वध न हो।

फिर न जाने कैसे हमारी केन्द्रीय सरकार की बुद्धि बदल गई। उन्होंने प्रान्तों को एक परिपत्र भेजकर यह आज्ञा दी कि गोवध सर्वथा बन्द न किया जाय, जहाँ बन्द कर दिया हो वहाँ उस पर पुनर्विचार किया जाय। इस के पश्चात् ही राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ ने गोवध बन्दी का आन्दोलन उठाया। हमारे प्रधान मन्त्री को सघ के नाम से बहुत चिढ है। सघ वाले कैसा भी कहें उसके विरुद्ध बोलना ही चाहिये। अब ऐसी स्थिति पहुंच गई है कि 'गोवध बन्द हो' ये शब्द कांग्रेसियों को गाली के समान बन गये हैं। वे कहते हैं कि गोवध बन्दी का नाम मत लो, गो सम्बद्ध न कहो। अर्थात् सिर को कटा लो, बालों की रक्षा करा। हम लोग समझते थे जहाँ जनता के हस्ताक्षर जायँगे लोकमत का आदर करने वाले राष्ट्रपति तुरन्त कहेंगे ९० प्रतिशत लोगों की माग है। इस देश मे गोवध न होगा किन्तु हस्ताक्षर राष्ट्रपति के पास पहुचने भी न पाये बीच ही में कांग्रेस के सभापति या प्रधान मन्त्री ने पूछे बिना प्रसग निर्णय दे दिया। केन्द्र गोवध बन्दी नहीं कर सकता। सघ वालों की यह राजनैतिक चाल है।

लड़ाई दो दल वालों की हो और गला गौ का काटा जाय। अब हम लोग क्या करें ?

(५)

मेरे मन में भी गौ माता के लिये यत्किंचित् स्थान है। बहुत दिनों से मैं सोच रहा था कि गौ माता के लिये मैं क्या कर सकता हूँ। एक बार जब मैंने भरी रेल गाड़ी में गौओं को कटने को जाते देखा तो मेरे मन में आया मैं रेल की पटरी पर लेटकर अपने प्राण दे दूं। किन्तु सोच लेना सहज है प्राण देना अत्यन्त कठिन है। मैं प्राण नहीं दे सका। आज कल प्रयाग से हजारों गौयें डिब्बे में भर कर कलकत्ते कटने जाती हैं। भरवारी स्टेशन से वे लादी जाती हैं। कसाई उन्हें कलकत्ता ले जाते हैं। मेरे मित्रों ने आकर सब गाड़ियों के नम्बर दिये। मुझे ले जाकर दिखाया। डिब्बे में घुसकर इन असहाय माताओं को मैंने देखा। किन्तु मैं रोने के अतिरिक्त कुछ कर न सका। प्राण न दे सका।

(६)

एक बार मेरे मन में प्रेरणा उठी कि संसद में किसी सदस्य से गोवध बन्दी का प्रस्ताव कराया जाय। जो उसके विरुद्ध मत दें उनका जहाँ भी वे मिलें मुँह काला कराया जाय। कुछ स्वयं सेवक बनाए जायँ और वे स्पष्ट घोषणा कर दें कि हम और कुछ क्षति नहीं पहुंचावेंगे गोवध समर्थकों का मुँह काला करेंगे। जब तक वे जेल न भेज दिये जाँय, अथवा मार न दिये जाँय तब तक मुँह काला करने को तत्पर रहें। यह प्रेरणा मुझे स्वर्गीय हासानन्द जी की कार्यप्रणाली से मिली। वे नेताओं का मुख काला करते थे। महामना मालवीय जी, देशबन्धु दास, लाला लाजपत राय और स्यात महात्मा जी का भी उन्होंने काला मुँह किया था। वे गया कांग्रेस गये थे। मैं भी वहाँ था। सब लोगों

ने इस बात को स्वीकार किया कि जब तक भारत में गोवध होता है निश्चय ही तब तक हमारा मुख काला है। इसी के पश्चात् महात्मा गाधी ने गोरक्षा मंडल बनाया।

मैंने अपने परिचित बन्धुओं से सम्मति ली तो लोगो ने इस बात का विशेष समर्थन नहीं किया। मैंने भी सोचा ऐसा आन्दोलन मेरे साधु वेश के अनुकूल नहीं है, दूसरे इतने प्राणों का प्रण लगाने वाले स्वयसेवक मिलने कठिन हैं। स्वयसेवक न भी मिलते, यदि मेरे मन मे यह बात बैठ जाती तो कम से कम मैं अकेला ही कर सकता था।

(७)

फिर सोचा अपने चुनाव क्षेत्र में सर्वत्र सभा करके ग्राम-ग्राम से यह प्रस्ताव भिजवाया जाय कि प्रधान मन्त्री ने गौरक्षा के सम्बन्ध में भारतीय भावना के विरुद्ध विचार प्रगट किये है अत वे हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं। उन्हें त्यागपत्र दे देना चाहिए। यह काम सरल था किन्तु इसमें कई कठिनाइयाँ थीं। पहली तो यही कि मैं चुनाव मे प्रधान मन्त्री से हार चुका हूँ। लोग यही कहेंगे कि अपनी हार की झेंप मिटाने को यह कर रहे हैं। दूसरे प्रचार कार्य में तो कांग्रेसी अत्यन्त निपुण हैं। उनके हाथ में फौज, पुलिस, अधिकारी समाचार-पत्र सभी हैं। वे दिन को रात और रात को दिन प्रचार के द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। मेरे विरुद्ध चुनाव के प्रचार मे ही केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की पूर्ण शक्ति लगा दी गई। काश्मीर, बम्बई, कलकत्ता से न जाने कितनी मोटरें युवक युवतियाँ प्रचारार्थ बुलाए गये। केन्द्रीय सरकार के मन्त्रीगण, पटवारी से कलेक्टर तक सभी गाँव-गाँव, घर-घर घूम कर मेरे विरुद्ध ऐसी-ऐसी बाते करते थे जिनमें सत्य का सर्वथा अभाव था। यद्यपि यह मैं मानता हूँ कि प्रधानमन्त्री ने मेरे विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा, यही नहीं सर्वत्र उन्होंने मेरी

प्रशंसा ही की, किन्तु छुटभैयों का मुख कौन पकड़े, वे तो जो मुख में आती थी कहते थे। एक छोटा-सा उदाहरण लीजिये, मेरा चुनाव चिन्ह नौका था, कांग्रेस का चुनाव चिन्ह था बैल की जोडी। इस पर किसी कांग्रेसी ने जनता को समझाया 'ब्रह्मचारी जी बड़े गौभक्त बनते हैं। फिर उन्होंने नौका का चिन्ह क्यों लिया। जब चुनाव चिन्ह लेने की बात चली तो नेहरू जी ने कहा— "मैं तो बैलों का चिन्ह लेता हूँ तुम गौ का लो" इस पर ब्रह्मचारी जी ने कहा—नहीं, मैं गौ का नहीं लूँगा, मैं तो नित्य नौका से स्नान करने जाता हूँ, उसी का लूँगा ऐसा मैंने अपने प्रचारकों के मुख से सुना है स्वयं तो किसी भी सभा में मैं जाता ही नहीं था। मैं कोई चुनाव की शिकायत नहीं करता। चुनावों में तो ऐसा होता ही है। इसी प्रचार से तो प्रतिपक्षी को पराजित किया जाता है। मेरा कहने का अभिप्राय इतना ही है कि जनमत की भावना के प्रचार में हम कांग्रेसियों से नहीं जीत सकते।

(८)

अपनी बात (१) शस्त्रबल (२) धनबल (३) जनबल और (४) तप बल से मनवाई जा सकती है। (१) शस्त्रबल हम पर है नहीं फिर सैन्यबल का प्रयोग तो अपने भाइयों पर किया नहीं जाता, वह तो आततायी धर्महीन शत्रुओं के लिये है। धन बल का कटु अनुभव हमें इस चुनाव में हो चुका। कांग्रेसियों ने प्रचार तो यह किया कि ब्रह्मचारी जी के पास लाखों रुपये है, सैकड़ों मोटरें हैं किन्तु वास्तविक बात यह थी कि हम पर इतने पैसे भी नहीं थे कि मतदाताओं को देने को चुनाव पत्र भी पूरा छपवा सकें। सैकड़ों की कौन कहे, काशी, कानपुर, प्रयाग में प्रयत्न करने पर भी किराये की एक मोटर हमको न मिल सकी। लोगों ने कह दिया था कि जो ब्रह्मचारी जी को मोटर देंगे उनकी मोटर जला दी जायगी। जो लोग मेरा पैर छूने आते थे उन्होंने भी गुप्तचरों

क भय से आना बन्द कर दिया था कि कहीं हमारा नाम न लिख लिया जाय। झूसी में गुप्तचरों का तांता लग गया था। मैं कुछ संसद में जाने, सदस्यता करने अथवा चुनाव जीतने के लिये नहीं खड़ा हुआ था, एक सिद्धान्त केवल दिग्दर्शन करना था। उस पर यह दशा रही। (३) रही जनबल की बात सो उतने दिनों दासता में रहते रहते हममें अत्यन्त भय, अकर्मण्यता और हीनता आ गई है। स्वराज्य भी हमें बिना क्रान्ति के मिल गया इसलिये जनता हृदय से गोरक्षा चाहती है किन्तु उसके लिये बलिदान करने को तत्पर नहीं। (४) पहले साधु महात्मा ब्राह्मण अपने तप तेज के प्रभाव से शासकों से जो चाहते थे करा लेते थे। आज हम तप से रहित तेजहीन, श्रीहीन, सदाचार हीन बन गये हैं। हममें तप होता तो यह प्रसंग ही नहीं आता। 'एकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्' यदि एक सच्चा ब्राह्मण कुपित हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र को पराजित कर सकता है। अब वैसा तप तेज कहाँ है ?

अब एक ही उपाय है। अपने हृदय को कड़ा करके अपने सिद्धान्त पर बलिदान हो जाय। बलिदान का प्रभाव बहुत होता है। श्री रामालु ने आन्ध्र के बटवारे के लिए प्राण दे दिये, तुरन्त आन्ध्र के बँटवारे की बात मान ली गई। अधिकारी गण कहते हैं कि उसके बलिदान का हम पर कोई प्रभाव नहीं। हम तो आन्ध्र को पृथक करने का पहले ही निर्णय कर चुके थे। किन्तु इसमें सत्यांश कम है। उनके बलिदान का प्रभाव अवश्य हुआ। वह उचित हुआ या अनुचित इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

मेरे भी मन में यह बात आई। तुझे अब करना ही क्या है ? तेरे बाल बच्चे नहीं, किसी सभा समिति का भार नहीं। भागवती कथा को पहले ५०-६० भागों में ही लिखने का संकल्प

था। यही उसके पहले विज्ञापनों में सर्वदा छपता भी था।
१०८ खन्डों का विचार तो पीछे बना ६० से अधिक भाग लिख
भी गये। कथा भाग समाप्त भी हो गया। गौओ के लिये तू
अपने प्राणों की क्यों नहीं दे देता।

इस विचार के आने पर मैंने अपने पाँच सात सम्माननीय
बन्धुओं से सम्मति की, यदि मुझमें इतना गो प्रेम होता कि एक
एक क्षण भी गौ हत्या मेरे लिये असह्य हो जाती तब तो सम्मति
आदि की आवश्यकता ही नहीं पडती। गौ प्रेम की न्यूनता से,
प्राणों के मोह से और सार्वजनिक प्रश्न होने से मैंने अपने से
अधिक अनुभवी और विद्वानो से सम्मति लेना आवश्यक समझा।
यह सब मैंने देख लिया कि यह काम अशास्त्रीय तो नहीं है।
यद्यपि यह बात मैंने न तो किसी समाचार पत्र मे छपायी न
सर्व साधारण में प्रकट ही किया, क्योंकि जिस प्रकार मैं वाणी
पर संयम रखने का प्रयत्न करता हूँ उसी प्रकार लेखनी का सयम
रखने की चेष्टा करता हूँ। कोई बात असत्य बनावटी न निकल
जाय। इसका पालन कहाँ तक होता है इसे सर्वान्तर्यामी प्रभु
ही जाने। हाँ, तो बहुत गुप्त रखने पर भी बात फैल-सी गई।
बलिया में एक सन्त ने राजर्षि टण्डन से भी कह दी। वे सुनते
ही मेरे पास झूसी दौडे आये। उस समय मैं नित्य का कीर्तन
कर रहा था। टण्डन जी ने मेरे एक साथी से पूछा "ब्रह्मचारी जी
का शरीर ठीक है न ?" उन्होंने कहा "हाँ ठीक है।" फिर उन्होंने
पूछा "उनकी बुद्धि ठीक है न ?" इसका वे क्या उत्तर देते। कीर्तन
करके जब मैं निवृत्त हुआ तो वे हँसते हुए बोले "मैंने पूछा था
तुम्हारी बुद्धि ठीक है न ? मेरे प्रश्न का अभिप्राय तुम समझ—ही
गये होगे ?"

मैंने पूछा—" मैंने बुद्धि हीनता की कौन-सी बात कर डाली है ? वे आवेश में आकर बोले—"यह कायरता का काम है आप जैसे उत्साही व्यक्ति को यह अनशन आदि शोभा नहीं देता। जन मत को जागृत करके गौ रक्षा करो। यह जो आप आत्महत्या बलिदान करना चाहते हो उस शक्ति को दूसरी ओर लगाओ। यह कह कर उन्होंने गीता का यह श्लोक पढ़ा—

कुतस्त्वाकश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

मैंने कहा' बाबूजी, आप को तो कांग्रेस का मोह हो गया है। मैं कोई अशास्त्रीय बात तो कर नहीं रहा हूँ। हम लोगों को तो अनशन करने का, धरना देने का शास्त्रीय विधान है। चित्रकूटमें भरतजी जब श्रीरामचन्द्र जी को लौटाने गये और जब श्रीराम-चन्द्र जी किसी भी प्रकार अवध लौटने को उद्यत न हुए तो भरत जी ने शत्रुघ्न जी से कहा—"शत्रुघ्न, तुम चटाई लेआवो, मैं आर्य-पुत्र के सामने बिना खाये अनशन करके धरना दूँगा'। यह सुन कर शत्रुघ्न जी संकोच में पड़ गये, वे श्रीरामचन्द्र जी का मुँह देखने लगे। भरत जी ने जब देखा कि शत्रुघ्न कुशकी चटाई नहीं ला रहे हैं तो वे स्वयं उठे और कुश की चटाई बिछा कर अनशन करने बैठ गये।

इस पर श्री रामचन्द्र जी ने बड़े स्नेह से भरत जी से कहा—भरत मैं कौन-सा अन्याय कार्य कर रहा हूँ जिसके लिये तुम अनशन करने जा रहे हो, फिर मूर्धाभिषिक्त राजाओं के लिये तो अनशन करने का विधान भी नहीं है। हाँ, ब्राह्मण बिना खाये पिये एक करवट लेटकर मनुष्यों को अन्याय से रोकने के लिये अनशन किया करते हैं। यह तो शास्त्रीय विधान है।'

ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरानूरोद्ध मिहार्हति ।
न तु मूर्धाभि पिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥

इस प्रकार मैं कोई अनार्यजुष्ट अस्वर्ग्य तथा अकीर्तिकर कार्य नहीं कर रहा हूँ। आप इसे आत्म-हत्या बता रहे हैं।

उन्होंने हँस कर कहा—"हाँ भाई, होगा, किन्तु यह सबसे अन्तिम उपाय है। आत्महत्या तो मेरे मुख से निकल गई, इसीलिये पीछे बलिदान कहा। किन्तु इसका अभी समय नहीं। मुझे कांग्रेस से कोई मोह नहीं। इसका नाम भी विदेशी है और स्वराज्य मिल जाने पर अब इसकी आवश्यकता भी नहीं। काय बहुत समझ-बूझकर करना चाहिए, इस प्रकार जैसे बड़े बूढ़े नेता समझाते हैं बहुत देर तक समझाते रहे।

(६)

भाई जी श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार से भी मैंने इस विषय में सम्मति ली। वे भी बहुत सभ्रम मे पड गये। उनका तार आया 'अभी शीघ्रता न करें'। उन्होंने तुरन्त राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी को एक पत्र लिखा कि ब्रह्मचारी जी का ऐसा-ऐसा विचार है। आप इस विषय में कुछ कर सके तो करें। उनके पत्र का जो उत्तर राष्ट्रपति जी के यहाँ से आया उसे पाठको की जानकारी के लिये यहाँ दिया जा रहा है —

डाक्टर श्री राजेन्द्र प्रसाद जी के पत्र की प्रतिलिपि

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
२४ जनवरी १९५३

प्रिय श्री हनुमान प्रसाद जी

आपका २१-१-५३ का पत्र मिला और उसके साथ ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी के पत्र का उद्धरण भी मैंने पढ़ा। गो सेवा और गोरक्षा की बात इस समय देश में बहुत चल रही है और इस

विषय में बहुत बातों में काफी प्रगति भी हुई है। गो संवर्धन की बात तो सभी लोग मान गये हैं और उसके लिये जो कुछ होना चाहिए उसका समर्थन भी लोग करते हैं। गोवध के सम्बन्ध में कानून से यहाँ तक मामला पहुँच गया है कि अधिकांश स्थानों में ऐसे गोवंश का वध नहीं हो सकता जो काम के लायक हों। अर्थात् बैल जो अपना काम करने के योग्य हों। कई जगहों में यह कानूनी तौर से पास हो चुका है कि गोवध एकबारगी बन्द हो। इसके लिये आन्दोलन भी काफी चल रहा है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मचारी जी का अनशन अनावश्यक प्रतीत होता है। अगर विचार कर स्थिति का विश्लेषण किया जाये तो गोवध का मुख्य कारण भी मालूम हो सकता है। धार्मिक कृत्य के तौर पर जो गोवध होता है वह साल में एक दिन होता है और वह भी बहुत बड़े पैमाने पर नहीं होता। जो वध प्रतिदिन होता है वह आर्थिक कारणों से होता है। जितने गो-वंश कसाईखानों में जाते हैं उनमें से अगर एक-एक का पता लगाया जाये तो मालूम हो जायगा कि उनमें से अधिकांश हिन्दुओं के घर से ही जाते हैं। यदि उन्हें रखकर खिलाना-पिलाना असंभव हो जाता है और बेचने से कुछ पैसे मिल जाते हैं जिनकी भूखे गरीबों को हमेशा ही आवश्यकता रहती है तो हिन्दू भी कोई न कोई बहाना निकाल कर आँख बन्द करके गो वंश को हत्यारे के हवाले कर देते हैं। बाजारों और मेलों में जितने जानवर बिकते हैं उनको जाकर देखा जाये तो जो मैं कह रहा हूँ उसका पूरा प्रमाण मिल जायगा। यदि कानून द्वारा गो-वध बन्द कर दिया जाये तो उसमें धार्मिकता से

गो-वध बन्द नहीं होगा क्योंकि उसका मूलभूत कारण अपनी जगह पर काम करता ही रहेगा। जब कोई कसाई के हाथ नहीं बेच सकेगा और अपने घर में गोवंश को पाल भी न सकेगा तो वह उसको यों ही छोड देगा और जैसा अक्सर देखा जाता है इस तरह गोवश की रक्षा करने वाले उनको मारेंगे तो नहीं मगर वे खाना वगैर मौत के घाट उतर जायँगे। जहाँ कहीं अकाल पडता है वहाँ यह दृश्य देखने में बहुत आता है। पर पर जहाँ अकाल नहीं भी हो वहाँ भी आजकल की महँगी और कठिनाई के दिनों में बहुतेरे लोग जो पालने की शक्ति नहीं रखते और साथ ही वधिक के हाथ वेचना भी यों ही जानवरो को अपने गाँव या घर से कुछ दूर ले जाकर जहाँ लोग पहिचान न सकें कि वे किसके जानवर हैं छोड देते हैं। मैंने भी देखा है कि इस तरह के वे बहुतेरे जानवर गाँवों में फिरते हैं और खाद्य पदार्थों के बदले केवले मार खाते रहते हैं। यदि गो-वंश की रक्षा उद्देश्य है तो इस कारण को किसी न किसी तरह से दूर करना चाहिए और मेरे विचार मे यह सच्ची गो-सेवा और गोरक्षा होगी। मैं चाहता हूँ कि इस विषय में केवल भावुकता से काम न लेकर बल्कि निवेक से काम लेना चाहिए और आप से मेरा आग्रह करके कहे कि जो कठिन व्रत वे उठाना चाहते हैं उससे भी काम सिद्ध न होगा। अगर कानून से बन्द कर दिया जाये तो जैसा मैंने ऊपर बताया है दूसरे कारणों से गोवध बन्द नहीं होगा। यद्यपि छुरी से गला काटकर क्षण में उसका प्रणान्त न किया जायगा पर महीनों भूखा रखकर शनै शनै हम उनको मारेंगे।

इसलिये यदि मेरी राय आप जानना चाहे तो मैं यही कहूँगा कि आप और ब्रह्मचारी जी अपनी सब शक्ति लगाकर विशेष करके हिन्दुओ मे इस बात का प्रचार करें कि वे गाय की सच्ची सेवा करें। केवल दिखाने वाली सेवा नहीं और आँख बचाकर गोवध हो या कराया जाये तो उससे ही सतोष मानें। मैंने सुना है कि गावो मे यह प्रथा प्रचलित है कि जब गाय वाला गाय वेचना चाहता है तो खरीददार को उसका पगहा पकडा देता है। वाजारो और मेलों मे जो कसाई के हाथ गाय या बैल वेचता है तो वह सीधे अपने हाथ से कसाई के हाथ में पगहा नहीं पकडाता वल्कि पगहा जमीन पर डाल देता है और उसी तरह से कसाई भी रुपये उसके हाथ मे न देकर जमीन पर रख देता है जिसे वेचने वाला उठा लेता है और कसाई पगहा उठा लेता है इस तरह की भावना से ही हम सतोष मान लेते हैं यह हितकर नहीं है। इसीलिये मैं समझता हूँ कि वैसा कारण को दूर करने में बहुत काम करना है यदि उसमे ब्रह्मचारी जी अपना समय और शक्ति लगावें तो ठीक गो सेवा कर सकते हैं।

श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार
गीता प्रेस, गोरखपुर

आपका
राजेन्द्र प्रसाद

पत्र मे जो बातें कही गयी हैं उनकी सत्यता और उपयोगिता के सम्बन्ध मे किसी को मतभेद नही हो सकता, किन्तु ये सब टालने की बाते हैं। जब किसी बात की उपेक्षा करनी होती है तो मूल बातका उत्तर न देकर इधर उधर की बातें कह दी जाती हैं। (१) वध शालाओ मे गौएँ हिन्दुओ के ही यहाँ से जाती हैं। (२) आर्थिक संकट के कारण गृहस्थ गौओ को वधिको के हाथो बेंचने को विवश हो जाते हैं। (३) दूध न देने वाली गौओ को तथा बूढ़ी टेढ़ी गौओ को कुछ लोग छोड़ देते हैं (४) खेतों मे पड़ने पर ऐसी गौओं पर मार भी पड़ती है (५) लोग पगहा भूमि पर डालकर रुपया भूमिपर रखवाकर गौ न बेचने का ढोंग भी करते हैं।

इन बातो को हम अस्वीकार नही करते, किन्तु यह कहना कि इन बातों को तुम बन्द करदो तो आप से आप गौवध बन्द हो जायगा यह टाल-मटोल है। ऐसे तो हम कह सकते हैं, सब राष्ट्रप्रेम करें फिर सेना की क्या आवश्यकता। सरकार गॉव-गॉव एक-एक उपदेशक रख दे कि चोरी मत करो लड़ाई मत करो, सत्य का व्यवहार करो फिर पुलिस की क्या आवश्यकता, लोगो को उपदेश दे दें प्रत्येक का भाग दे दो फिर न्यायालयो की क्या आवश्यकता। सरकार तो इसीलिये होती है कि वह अपराधियों को दंड दे, जनता की भावना का विचार करके उनके दुख को दूर करे।

विना दूधकी अथवा बूढ़ी गौओं की रक्षा का भार सरकार के ऊपर है।

हम कब कहते हैं ये कारण न हटाये जायँ, ये कारण, अवश्य हटाये जायँ, गौओं की रक्षा का पालन का उनके वंश के सुधारका प्रचार किया जाय। गौ पालन के लिये लोगों को विवश किया जाय साथ ही गौवध को कानून से भी बन्द किया जाय,

जब तक गोवध नियमानुसार बन्द न किया जायगा तब तक स
योजनायें व्यर्थ हैं।

कुछ लोग पश्चिमीय भौतिक वादियों से सीखी हुई बा
कहने लगे हैं दूध न देने वाली बूढ़ी, लूली, लँगडी गौऍं व्यर्थ
दुधार गौओं के चारे को खा जाती हैं इसलिये उन्हें काटकर चम
से अधिक आय करनी चाहिये उनके मांस को खाकर अन्न व
बचत करनी चाहिए। उनके चारे को बचाकर दुधार गौओं क
चारा खिलाकर दुग्ध का उत्पादन बढाना चाहिए।

यह इतना मूर्खता-पूर्ण तर्क है, कि इससे बढ़कर कृतघ्नता
और क्षुद्रता के विचार कोई हो ही नहीं सकते। सहृदय पुरुष ऐसी
ओछी बात कह नहीं सकता। एक तो चारा तुम्हारे भंडार में
भरा नहीं जिसमें से तुम व्यय करो, परमात्मा सब के लिए पैदा
करता है, दूसरे यही बात अपने बूढे,लँगडे-लूले, तपेदिक कुष्ट तथा
अन्य संक्रामक रोगी सम्बन्धियों के सम्बन्ध में भी तो कह सकते
हैं। जैसे हम इन सब का प्रबन्ध करते हैं वैसे ही अनुपयोगी
गौओं का भी हमें प्रबन्ध करना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं गौऍं काटी न जायेंगी तो वे बहुत बढ़
जायेंगी, इधर-उधर बिना स्वामी के अनाथ फिरेंगी मार खायेंगी,
भूखों मरेंगी; इससे तो अच्छा है काटकर उनका उपयोग भी
किया जाय।

मुझे तो आश्चर्य इस बात का होता है, जिस गौ के एक
बूँद रक्त के लिये हम अब तक अंगरेजी-राज्य तक प्राण देने
को तत्पर हो जाते थे, उस गौ के सम्बन्ध में हम ऐसी भी सार
हीन, हृदय हीन, धर्म विहीन, तर्क दे सकते हैं, यह हमारा कितना
नैतिक पतन है। देशी राज्यों में एक तिहाई भारत में कभी भी
गोहत्या नहीं होती थी वहाँ तो कभी भी ऐसी गौऍं मारी- मारी
नहीं फिरती थीं। मैं अभी-अभी शिवरात्रि पर नैपाल की यात्रा

करके आया हूँ। नैपाल में तो आजतक कभी गोहत्या हुई हा नहा वहाँ तो एक भी गौ ऐसे मारी नहीं फिरती, यथार्थ बात तो यह है कि हमारे प्रधान मत्री के मस्तिष्क मे किसी ने यह वात भर दी है कि गौ रक्षा का प्रश्न शुद्ध धार्मिक प्रश्न है, इसे यदि सरकार ने स्वीकार कर लिया तो उसकी धर्म निर्पेक्षता नष्ट हो जायगी, जो हमारे प्रधान मत्री की सब से प्रिय वस्तु है। इसी के लिये ये बहाने बाजियाँ हैं। अनुपयोगी गौओं का, क्या उनकी रक्षा हम नहीं कर सकते? क्यो नहीं कर सकते जी? जो सरकार हमारी भावना की रक्षा नहीं कर सकती उसे शासन करने का अधिकार ही नहीं। इस सम्बन्ध की मुझे एक घटना याद आगई। वह घटना यही नेहरू जी की जन्मभूमि तीर्थराज प्रयाग की है। घटना लगभग २५–३० वर्ष पहिले की है, दो कुम्भ के पहिले अर्धकुम्भ का मेला था अँग्रेजी शासन था। प्रयाग का माघ मेले का प्रबन्ध सरकार करती है। उस समय गगा जी ठीक किले के नीचे वह रही थीं स्नान के दिनों मे गगा जी की इतनी तीव्र धारा हो गयी कि जहाँ गगा जमुना का सगम था। उससे तनिक ही नीच अथाह जल था। सगम स्नान के लिये जो भी जाय उसका तनिक पैर फिसले कि डूब जाय। अधिकारियोंने बल्ली लगाकर संगम को घेर दिया कि कोई डूबने न पावे, जन रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य ही है महामना मालवीय जीने बडी लिखापढी की, गवर्नर को तार दिये कि जनता यहा सगम स्नान के लिये आती है, यदि माघ मकर मे सगम स्नान न मिला–तो हमारी धार्मिक भावना की रक्षा न होगी। कलेक्टर ने अपनी विवशता दिखायी कि हम आदमियों को मरने के लिये वहाँ स्नान न करने देंगे। प० जवाहर लाल नेहरू भी सगम स्नानार्थियों मे थे तो उन्होंने सरकार की आज्ञा की अवहेलना की। उन्होंने स्पष्ट कह दिया 'हमें इस बात से क्या प्रयोजन कि सरकार को क्या

कठिनाई है जैसे भी हो उसे जनता की भावना को पूरी करनी चाहिये।' वे स्वयं बाडा तोडकर घुस गये उनके पीछे सैकड़ों आदमी घुस गये। इस प्रकार नेहरू जी ने सत्याग्रह करके अधिकारियों की विवशता को और बढा दिया।

अंगरेज तो चले गये, किन्तु हम यह कहे बिना न रहेंगे कि वे अपने कर्त्तव्य पालन में आना-कानी नहीं करते थे। कलेक्टर ने सहस्रों आदमी लगाकर प्रवाह को रोकने को बालू और मिट्टी का एक पर्वत ही खडा कर दिया। बोरों में बालू भरा भरा कर संगम को स्थलावना दिया। वह टीला आज भी खडा है और नेहरूजी के उस धार्मिक सत्याग्रह की घोषणा कर रहा है उसपर ५-७ पीपल आदि के पेड भी होगये हैं अब कितनी भी बडी बाढ आती है वह टीला नहीं डूबता। जो बात नेहरू जी ने अगरेजों से सगम स्नान की भावना रक्षा के लिये कही थी क्या उसी बात को हम आज उलट कर नेहरू सरकार से गौरक्षा के लिए नहीं कह सकते ?

अरे, मैं तो वहक गया, मै गोसेवा व्रत की बात कहते कहते सरकार की आलोचना करने लग गया जो मेरा मुख्य विषय नहीं था।

हाँ तो मेरे अनशन की बात पर एक महात्मा ने मुझसे एक बडी अच्छी बात कही जो मेरे मन में बैठ गयी, उन्होंने कहा 'क्या यथार्थ में आपके हृदय मे गौ-माता के लिये इतना प्रेम है, कि उनके वध को देखकर आपको अपना जीवन भार प्रतीत हो ?" इस पर मैंने अपने मनको टटोला तो मुझे लगा गौओ के प्रति मुझमें अभी उतना प्रेम नहीं हैं। प्रेम कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं, जो कहीं भी उत्पन्न कर दी जाय। प्रेम स्वाभाविक होता है, हाँ वह दर्शन स्पर्श, सहवास, निष्काम-सेवा तथा और भी अन्य

उपायों से बढ़ाया जा सकता है। जो लोग अनाथालयों में बच्चों की देख रेख रखते हैं या राजकीय चिकित्सालयों में रोगियों की वेतन लेकर सेवा करते हैं वे निरंतर साथ रहने पर भी उनसे प्रेम नहीं बढ़ा सकते। क्योंकि वह उनका व्यवसाय है इसी प्रकार गौओं के काटने वाले गौओं में ही रहते हैं उनका दर्शन, स्पर्श, सहवास करते हैं किन्तु उनका प्रेम उनमें नहीं होता। इसलिये आरंभ से ही हृदय में स्वाभाविक प्रेम हो, वह सेवा से बढ़ाया जा सकता है। जिसने गौ की स्वयं सेवा न की हो उसका गौ में अत्यधिक प्रेम प्रायः नहीं हो सकता। हम लोग गौ का दूध तो पीना चाहते हैं, किन्तु गौ रखना नहीं चाहते। मोटर भले ही चार रख लेंगे किन्तु दूध मोल मँगाकर ही पीवेंगे। कौन गौ के झंझट में पड़े। जबतक हमारी माता-पिता में पूज्य भावना थी तबतक हमारे माता पिता कितने भी बूढ़े हो जाँय हम चाहते थे घर में बड़े बूढ़े बैठे रहें, हमारे घर की शोभा है। जब से श्रद्धा भक्ति कम हुई तब से बूढे हमें भार प्रतीत होने लगे हैं। कुछ लोग तो उन्हें अनाथालयों में भी भेजने लगे। आश्चर्य नहीं कुछ दिनों में 'अन्न-बचाओ-आन्दोलन' के अन्तर्गत उनकी समाप्ति के लिये भी कोई ऐसी सुई (इन्जेक्शन) निकले जिससे अनुपयोगी स्त्री पुरुष सदा के लिए समाप्त कर दिये जाँय। मैं अभी कलकत्ता गया था जो लोग दूध का व्यवसाय करते हैं वे हरियाने की दूध देने वाली गौ को मोल ले लेते हैं चार पाँच महीने जब तक दूध देती है तबतक रखते हैं फिर उन्हें वधिकों के हाथों भेज देते हैं। वधिक लोग पंजाब की ओर से दूध देने वाली गौओं को भरकर ले जाते हैं दो बिना दूध की गौओं के बदले एक दूध देने वाली गौ दे देते हैं। वे लोग तो गौ को दूध देने वाली मशीन समझते हैं, बच्चों को मार डालते हैं दूध न देने वाली गौ को एक दिन भी नहीं रख सकते। उन्हें क्यों वे इतने दिन खिलावें और कहाँ रखें। इस

प्रकार दूध देने वाली नयी गौवें लाखो कटती हैं। जब तक गौ के प्रति हमारे मन मे पूज्य भाव न होगा तबतक न तो हमे उन्हे रखने का उत्साह होगा न उनसे प्रेम ही होगा।

व्यवसाय के रूपमे जो दुग्धालय चलते हैं बच्चा देते समय गौ की आँखों मे पट्टी बाँध देते हैं बच्चा पैदा होते ही उसे पृथक कर देते हैं माता को उस बच्चे को देखने, चूमने-चाटने नहीं देते उसे माता के थन से दूध नहीं पिलाते इसीलिय गौ का उस बच्चे मे प्रेम भी नहीं बढता। व्यापारी उन बच्चो को वधिको या अन्य किसी क हाथो बेच देते हैं, गो बिना बच्चे के ही दूध देती है वह दूध प्रेमहीन, भावहीन रक्त के समान होता है। उसके पीने से स्वार्थ के भाव बढेंगे। प्रेम, दया, परोपकार के भाव कभी भी न बनेंगे यदि हमे गौओ से अत्यधिक प्रेम बढाना है तो हमे गो सेवाव्रत लेकर निरतर गौओं मे ही कुछ काल रहना पडेगा अपने हाथो उनकी सेवा सुश्रषा करनी पडेगी यह बात गो सेवा व्रत से ही सभव है।

(१०)

गो व्रत के नियम

(१) गो सेवा व्रत लेने वाले व्रती को निरतर गौओ के ही बीच रहना होगा।

(२) मुख से या मन से गायत्री का जप या भगवन्नाम का स्मरण करते रहना होगा।

(३) गौ का दूध अथवा गौ को जौ खिलाकर फिर उसके गोवर मे जो अन्न के दाने निकलें उन्हे ही खाकर रहना होगा।

(४) स्वय गौ का गोवर-मूत्र उठाना, उनके नीचे की सफाई करना, उनको कुट्टी भूसा चारा आदि देना स्वय चराने जंगल मे ले जाना, उनका दूध दुहना, बाँधना-खोलना उनकी डास

मच्छरों से रक्षा तथा अन्य सभी प्रकार की सेवा स्वयं करनी होगी। जैसे माता अपने शिशु की सभी प्रकार की ऊँची-नीची सेवा निष्काम भाव से करती हुई प्रेम पूर्वक उसकी देख-रेख करती है, वैसे ही प्रेम श्रद्धा पूर्वक गौ की परिचर्या करनी होगी।

(५) गौ को इष्ट समझकर उसके लिये यथाशक्ति बलिदान के लिये तत्पर रहना होगा।

गो सेवा व्रत की योजना

(१) इस गो सेवा व्रत का इसी आषाढी-पूर्णिमा, गुरु-पूर्णिमा से आरम्भ करने का विचार है।

(२) यह व्रत संकीर्तन भवन झूसी (प्रयाग) में आरम्भ होगा।

(३) विचार तो ऐसा है कि सवत्सा गौएँ एक सौ आठ रखी जाँय। मिलने पर अधिक भी रखी जा सकती हैं न मिलने पर कम भी।

(४) चार गौओं पर एक गोव्रती रखा जा सकता है जितने भी गोव्रती मिलेंगे, रखे जा सकेंगे।

(५) गौओं की रक्षा के लिये एक छोटी सी समिति रहेगी जो उनके ऊपरी व्यय आदि का प्रबन्ध करेगी।

(६) यह व्रत आषढी पूर्णिमा रविवार २६ जुलाई से कार्तिक शुक्रवार २० नवम्बर तक होगा। चार महीने तक गौएँ तथा गोव्रती सर्वथा साथ ही रहेंगे। गौओं के चराने के लिये कुछ किराये पर भूमि ली जा सकेगी जिसमें गौएँ चरसकें तथा कुछ हरा चारा भी उत्पन्न कर सकें।

(७) गौओं का गोव्रतियों से बचा हुआ दूध अथवा मट्ठा शिशुओं को तथा अन्यान्य व्यक्तियों को बाँट दिया जायगा। इससे कोई व्यापारिक कार्य नहीं किया जायगा।

(८) कार्तिकी पूर्णिमा पर ये सब गौएँ योग्य व्यक्तियों को दान कर दी जायँगी। उनसे प्रतिज्ञा कराली जायगी कि वे गौ को बेचे नहीं और कम से कम उसकी एक बछिया वे भी किसी योग्य व्यक्ति को दान कर दें।

(९) कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् गोव्रती अपने-अपने नगरों को चले जायँगे किन्तु उनके व्रत का एक शेष रह जायगा। वह कि वे अपने नगर से एक गौ लेकर पुनः प्रयाग की पैदल यात्रा करें। पूरी न कर सकें तो जितनी कर सकें उतनी पैदल यात्रा करें। अब की प्रयाग में बारह वर्ष के कुम्भ का मेला है अतः वे माघी अमावस्या तक यहाँ पहुँच जायँ। त्रिवेणी स्नान करके :माघ की पूर्णिमा को उस गौ को दान दें। इस प्रकार चार और चार आठ महीने का व्रत है।

(१०) गौ-प्रेम जिनका जितना ही बढ़ेगा उनमें उतनी ही अधिक गौ के लिये बलिदान की भावना बढ़ेगी। माघ की पूर्णिमा के पश्चात् का कार्य क्रम पुनः प्रकाशित होगा।

मेरी अन्तिम प्रार्थना

मैंने अत्यन्त संक्षेप में गो सेवा व्रत की आवश्यकता, उसके नियम और इस संकल्प के उठने का इतिहास पाठकों को बतलाया। गो-सेवा से इहलौकिक तथा पारलौकिक सभी कामनाएँ पूरी हो सकती हैं-पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन, विद्यार्थी को विद्या, यश की इच्छा वाले को यश, तथा स्वास्थ्य की कामना वाले को सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। बहुधा बड़े घरों की स्त्रियाँ सर्वदा रोगिणी बनी रहती हैं। चिकित्सा और औषधियों में उनका नियमित बहुत व्यय होता है। जब वे स्वयं अपने हाथों गौ की सेवा करने लगती हैं तो व्यय तो बच

हो जाता है स्वास्थ्य भी सुधर जाता है। इन कामनाओं वाले अपने घर पर रह कर गो सेवा व्रत कर सकते हैं।

हमारा यह गोव्रत, भारत में गोवध बन्द हो इस सकल्प से है। जो भाई हमारे इस काम मे सहयोग देना चाहें वे हमसे पत्र व्यवहार करें। गोव्रत करने के इच्छुक धार्मिक प्रवृत्ति के हों। उन्हें व्रत उपवास पर विश्वास हो। उन्होंने कभी-कभी कुछ व्रत उपवास किया भी हो। बिना अनुमति के कोई भाई न चले आवें क्योंकि यह व्रत दृढ़ता का है। भावुकता वश जोश में आकर न किया जाय।

प्रभुदत्त
सकीर्तन भवन,
झूसी प्रयाग

सन्यासाश्रम-धर्म

(१२८३)

यदा कर्म विपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १८ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

सन्यासी तजि अग्नि काम्य कर्मनिकूं छोरे ।
सबकी तजि आसक्ति जगततैं मुखकूँ मोरे ॥
दण्ड कमण्डलु रखै वस्त्र कौपीन लगावै ।
दृष्टि पूत पग धरे माँगिकें भिक्षा खावे ॥
षड वर्गनिकूँ जीतिकें, राखै मोमें सतत चित ।
अनुभव परमानन्द करि, विचरै है स्वच्छन्द नित ॥

सुख तीन प्रकार के होते हैं देखे, सुने और अनुभव किये। संसार मे बड़े-बड़े राजे महाराजे सेठ साहूकार हैं, वे बड़े-बड़े सुन्दर सुखद वाहनो मे चलते हैं, लिपे पुते स्वच्छ सुघर घरों में रहते हैं,

---

*भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी उद्धव जी से कह रहे हैं—"उद्धव ! जब प्रारब्ध कर्मों का विपाक हो जाय और इन नरक तुल्य स्वर्गादि लोकों में पूर्ण वैराग्य हो जाय, तो उस वानप्रस्थी को आहवनीय आदि अग्नियों को त्याग कर सन्यासी हो जाना चाहिये ।

सुन्दर से सुन्दर भोजन करते हैं। उनके सुखों को देखकर वैसा सुख भोगने की इच्छा होती है। शास्त्रों में सुनते हैं :—"स्वर्ग में इतनी सुन्दरी अप्सरायें हैं। इतने रमणीक कानन हैं, उनमें कल्पवृक्ष पारिजात के अम्लान पुष्प हैं। सदा उनमें से दिव्य सुगंधि निकलती रहती है। अमृत पान करने को मिलता है, चढने को विमान मिलता है। ये सब श्रुत सुख हैं। इन्हें सुनकर इच्छा होती है हम दानपुण्य आदि सुकृत करें जिससे हमें ये सुख प्राप्त हों। कुछ ऐसे सुख हैं जिनका जीवन में स्वयं अनुभव किया है और बारबार करके भी उनसे तृप्ति नहीं होती, यह इच्छा बनी ही रहती है ये सुख हमे अधिकाधिक प्राप्त हों।

इन तीनों ही सुखों की जब अत्यन्त निवृत्ति हो जाय। ये तीनों ही प्रकार के सुख विषवत् प्रतीत होने लगें, तब मनुष्य सन्यास का अधिकारी हो जाता है। जो इहलोक और परलोक और परलोक के समस्त सुखों को ठुकरा कर घर से निकल पडता है वही परिव्राजक कहलाता है। न्यास कहते हैं त्याग को। जो भली भाँति सब वस्तुओं का त्याग कर देता है वही सन्यासी है। सन्यासी के लिये ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोक नरक के सदृश हैं। वह तो इस ब्रह्माण्ड को भेद कर परमधाम को चला जाता है। जहाँ जाने से सदा के लिये आवागमन मिट जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वानप्रस्थ के धर्मों को बताने के अनन्तर भगवान् उद्धव को सन्यास धर्मों को बताते हुए कह रहे हैं—"उद्धव! यदि वानप्रस्थ धर्मों का पालन करते-करते, घोर तपस्या का जीवन बिताते-बिताते इस देह से तथा स्वर्गादि लोकों से सर्वथा विराग हो जाय, तो फिर अग्निहोत्र का जो एक बन्धन रह गया है उसे भी तोड दे। आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि जो अग्नियाँ हैं उन सबको अपने प्राणों में लीन करके निरग्नि हो जाय। किसी ऋत्विक् को बुलाकर विधिवत् सन्यास धर्म की दीक्षा

ले। पहिले अष्टका श्राद्ध करे फिर अग्नि मे प्राजापत्य यज्ञ करे और सन्यास मे जो-जो विधान बताये हैं उन्हे करके अपना सर्वस्व ऋत्विक् को दे दे। सब कुछ छोड़कर स्वच्छन्द होकर विचरण करे।

सन्यास लेते समय किसी के भी मोह मे न पड़े। ब्राह्मण जब सन्यास लेने का विचार करता है, तो सभी प्रकृति उसके प्रतिकूल हो जाती है। देवगण आकर भाँति-भाँति के विघ्न करते हैं।

उद्धव जी ने पूछा—"भगवन्! देवतागण विघ्न क्यों करते हैं? सन्यास लेने से उनको क्या हानि है?"

भगवान् ने कहा—"भैया, जो जिसका बलिपशु है, यदि वह अपने अधिकार से निकलकर स्वच्छन्द होता है, तो सभी को दुख होता ही है। देवतागण उसकी इन्द्रियो मे बैठ कर उन उन इन्द्रियों के भोगों को भोगते हैं। जब तक मनुष्य कर्म काण्ड मे फँसा रहता है, तभी तक देवताओ का पितरो का भाग देता है उनके निमित्त कर्म करता है। जब वह सब कर्मो का सन्यास कर देगा, तो देवताओं को पितरों को बलि क्यों देगा। यही नहीं वह ब्रह्माण्ड को फोडकर परमपद को प्राप्त हो जायगा। देवता ज्यों के त्यों फँसे ही रह जायँगे। इन्हीं सब कारणों से देवगण विघ्न करते हैं। वे सोचते हैं—" यह हमारे लोको को लाँघ कर परम धाम को प्राप्त न हो, सदा हमारा बलिपशु बना रहे।" इसी लिये वे कभी सुन्दर स्त्री का रूप रखकर, कभी अत्यन्त घनिष्ट स्नेही प्रेमी का रूप रख कर भाँति-भाँति से उसे गिराना चाहते हैं। इसलिये धीर वीर त्यागी को इन विघ्नों से घबराना न चाहिये। बडी सावधानी से सर्वस्व त्याग कर परिव्राजक बन जाय। यति धर्म की दीक्षा ले ले।

सन्यासी को सब कुछ त्याग देना चाहिये। यहाँ तक कि वस्त्रों को भी त्याग देना चाहिये। यदि वस्त्र धारण करने की आवश्यकता ही समझे तो केवल कौपीन मात्र धारण करे। एक साफी भी रख

सकता है जिससे कौपीन ढक जाय। यदि अस्वस्थ हो या शीतादि की बहुत बाधा हो तो एक कंथा भी रख सकता है। नहीं तो केवल एक कौपिन एक साफी। दन्ड और कमन्डलु ये ही वस्तुएँ अपने पास रखे। अधिक किसी भी वस्तु का संग्रह न करे। सब कुछ त्याग कर भी यतिधर्मो का सदा पालन करता रहे।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! यतियों के क्या धर्म हैं ? यतियो के मुख्य-मुख्य धर्म मुझे बताइये।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! यति का मुख्य धर्म है प्राणिमात्र को अभय प्रदान करना। सन्यासी को देखकर किसी के भी मन में उद्वेग न होना चाहिये। वह प्राणि मात्र पर कृपा की दृष्टि रखे। मनसा वचसा और कर्मणा किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अपने हाथ से दँतोन के लिये वृक्ष की डाली को भी न तोड़े।

(१) रास्ते में जब चले तो एक हाथ की भूमि को भली भाँति देख कर तब पैर रखे। ऐसा न हो कोई जन्तु पैर के नीचे दब जय।

(२) जल पीना हो तो उसे अगोछे से छान कर पीवे। ऐसा न हो कोई छोटा मोटा जीव जल के साथ चला जाय।

(३) जो भी बात बोलनी हो उसे पहिले भली भाँती विचार ले। सत्य के तराजू पर तोललें। ऐसा न हो कि शीघ्रता में कोई असत्य, अप्रिय तथा अहितकारी बात मुख से निकल जाय, जिससे दूसरों को क्लेश हो। कभी कभी वाणी की हिंसा शस्त्र की हिंसा से बढ कर दुखदायी होती है।

(४) जो भी कार्य करे उसे सोच समझकर करे। बिना सोचे समझे सहसा कोई कार्य कर डाला जिससे दूसरों को क्लेश हुआ तो यह यति धर्म के विरुद्ध कार्य हुआ। इसका सदा ध्यान रखे।

(५) सदा त्रिदण्ड धारण किये रहे।

उद्धवजी ने पूछा—"महाराज ! बाँस के तीन दण्ड धारण करने का अभिप्राय क्या है ?

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! ये तीनों दण्ड शरीर, वाणी और मन इन तीनों दण्डों के प्रतीक हैं। शरीर धारियों का अभ्यास होता है वे कुछ करते रहे। खाली बैठें रहने से उनका मन नहीं लगता। यति के शरीर का दण्ड तो यह है कि वह सदा निष्क्रिय बना रहे, सर्वारम्भ परित्यागी रहे। वाणी का स्वभाव है कुछ न कुछ इधर उधर की बातें बोलती रहे। इस लिये वाणी का दन्ड यह है कि उसे मौन रखे। संसारी कोई भी बात वाणी से न बोले। मन का स्वभाव है कुछ न कुछ ऊहा पोह करता रहे। इसीलिये प्राणों का संयम करे। प्राणायाम का अभ्यास करे। प्राणों के संयम से मन का संयम स्वतः ही हो जायगा। ये ही वास्तविक तीन दण्ड हैं। जो यति इनको तो धारण करता नहीं। मनमानी बातें बकता रहता है, शरीर से संसार भर के प्रपंच करता है, मन से संसार भर के व्यर्थ विधान बनाता रहता है और संसार में त्रिदण्डी प्रसिद्धि होने के लिये बाकी तीन लकड़ियों को लिये रहता है, तो वास्तव में वह त्रिदण्डी सन्यासी नहीं है ढोंगी है उसे सन्यास का फल नहीं मिलता। वे तीन लकड़ियाँ केवल उसकी आजीविका का साधन मात्र हैं।

(६) सन्यासी को सदा भिक्षान्न पर ही निर्वाह करना चाहिये। चारों वर्णों के यहाँ जाकर मधुकरी माँगलावे। जो लोग नीच हों, जाति च्युत हों, गौ घाती हों, ऐसे लोगों के यहाँ भिक्षा माँगने न जाय। भिक्षा को भिक्षा के ही रूप में माँगे। दंम्भ न करे। परिचितों के यहाँ नित्य-नित्य भिक्षा करने न जाय। जहाँ सम्मान से भिक्षा मिले वहाँ भी लोभवश नित्य माँगने न जाय। एक के ही ऊपर भार न दे दे। सात घरों में माँगने जाय। जिन घरों में माँगने जाय; उन्हें पहिले से ही निश्चय न करले कि अमुक-अमुक घर

माँगने जाना है। भिक्षा करने चल दे और अनिश्चित घरों में माँगने जाय। भिक्षा माँगते समय अपना प्रभाव प्रदर्शित न करे, कि हम पहिले ऐसे थे, हमने ऐसा त्याग किया है। अपने पूर्व आश्रम के ऐश्वर्य, बल, विद्या तथा प्रभाव को जता कर लोगों को प्रभावित न

करे। ज्योतिष वैद्यक आदि करके उनसे आजीविका न चलावे। न किसी की हस्तरेखा आदि देख कर भविष्य बतावे। अपरिचित भिक्षुक की भाँति भिक्षा माँगने जाय। सात घरों से जो भी मिल जाय उसीसे सन्तुष्ट रहे। भिक्षान्न को भिक्षापात्र में या वस्त्र में

ले। उसमें खट्टे, मीठी नमकीन आदि का भेद न करे। सब को में,ले ले। फिर नगर के बाहर जाकर जहाँ कोई नहीं, तालाब जलाशय हो वहाँ जाकर बैठे। जल छिड़क कर भूमि को शुद्ध फिर उस भिक्षान्न को भी जल छिडक कर या जल में डुबोकर करे। आस पास और भी जीव जन्तु हो उनको कुछ भाग निकाल कर शेष बचे हुए अन्न को मौन होकर खा ले। फिर के लिये बचा कर न रखे। जहाँ तक हो धनिकों के यहाँ भिक्षा करने न जाय। धनिको के यहाँ भिक्षा तो चिकनी चुपडी स्वादिष्ट मिलेगी, किन्तु उनका अन्न विशुद्ध नहीं होता। न जाने कितने लोगों का रक्त चूस-चूस कर कितने पाप करके धन एकत्रित किया है। यद्यपि यति अपने तप के प्रभाव से अग्नि की भाँति सब को पचाने में समर्थ है, फिर भी उसे जहाँ तक हो तहाँ तक शुद्धवृत्ति वालों के ही यहाँ से भिक्षा लानी चाहिये। जहाँ तक वानप्रस्थियों के ही यहाँ भिक्षा मिल सके तहाँ तक अन्य की भिक्षा ग्रहण न करे। कारण कि वानप्रस्थियों का अन्न बडा ही शुद्ध होता है, वे स्वयं अन्न को स्वयं ही जाकर एकत्रित करते हैं। उनकी वृत्ति विशुद्ध होती है। वे शिला बीनकर या उञ्छ वृत्ति से अन्न लाते हैं। अन्न जितना ही विशुद्ध हो, उतना ही शीघ्र उसके खाने से चित्त शुद्ध होगा और निर्मोह होने से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जायगी।

(७) किसी में भी आसक्ति न रखे। न एक गाँव या नगर में ही डेरा डाल दे। एक नगर मे एक दिन रहे। तीर्थ या बड़े नगरों में ३, ५ दिन तक भी रह सकता है।

(८).निरन्तर आत्मचिन्तन में ही लगा रहे। कार्य कारण से परे आत्मा में ही सम्पूर्ण प्रपञ्च को अध्यस्त समझे तथा इस कार्य कारण रूपात्मक जगत् में सर्वत्र सब में समान रूप से व्याप्त आत्मा को ही व्याप्त अनुभव करे।

(९) दृश्य प्रपञ्च से चित्त हटा कर आत्मा मे ही रमण करता रहे। आत्मक्रीड़ आत्मरति होकर बालको की सी क्रीड़ा करे।

(१०) जो भी शरीर सम्बन्धी सुख दुख आजाय उन्हें धैर्य के साथ सहन करे, सब में समान भाव रखे। यह ध्यान सदा रखे कि एक ही आत्मा सब मे समान भाव से व्याप्त है। विषमता तो है ही नहीं।

(११) किसी को साथ न रखे। बहुतों के साथ रहने से कलह हो ही जाता है। दो साथ रहने से भी इधर उधर की बातें हो जाती हैं, अतः अकेला ही विचरे।

(१२) सदा एकान्त मे निर्जन स्थान मे रहे। जहॉ हिंसक पशुओं का दंश मशको का उपद्रव हो ऐसे भययुक्त विघ्नवाले स्थान में भी न रहे। मेरी भक्ति मे सदा निमग्न बना रहे। फिर अपनी आत्मा का मेरे साथ अभेद भाव से चिन्तन करे।

(१३) एकान्त मे बैठ कर विचार करता रहे, कि प्राणी संसार में फँसता क्यो है। इन्द्रियों कि चंचलता से। यदि मछली अन्न के लोभ का संवरण कर ले तो जाल मे क्यों फॅसे। यदि हरिण कान को वश मे कर ले तो वह बहेलिया के द्वारा क्यों मारा जाय। यदि पतंगा रूपासक्ति के चक्कर मे न फॅसे तो उसे भस्म क्यों होना पड़े। इससे निष्कर्ष निकला कि बन्धन का कारण इन्द्रियों की चंचलता ही है। जिसने इन्द्रियों का संयम कर लिया वह बन्धन मुक्त बन गया। वह मोक्ष का अधिकारी हो गया। इसलिये पॉचों इन्द्रियों तथा छठे मन को जीत कर सांसारिक क्षुद्र कामनाओं को सदा के लिये तिलाञ्जलि देकर अपने हृदय के भीतर निरन्तर परमानन्द का अनुभव करता रहे।

(१४) तीर्थ यात्रा को उपलक्ष्य बनाकर सम्पूर्ण पृथिवी पर निर्भर होकर विचरे। एकान्त स्थानों में अधिक चित्त एकाग्र होता है। अतः बीहड़ वनों में घोर अरण्यों में,नदियों के तटों पर, पर्वतों पर, ऋषि मुनि और वानप्रस्थो के आश्रमों के निकट विचरा करे। गाँवों में, पुरों में गोपों के गोष्ठों में, तथा तीर्थ यात्रियों के झुंडों में केवल भिक्षा करने ही चला जाय। जहाँ पेट भरा तहाँ जंगल की ओर चल दे।

(१५) नित्य प्रातः सायंकाल जाग्रत और सुषुप्ति की सन्धि में आत्म साक्षात्कार कर के बन्धन और मोक्ष के रहस्य का अनुसन्धान करे। इस दृश्य प्रपञ्च को कभी भी वास्तविक और अविनाशी न समझे। क्योंकि जो दृश्य है वह नष्ट है। इसलिये लौकिक, पार लौकिक समस्त कामनाओ का त्याग कर दे। इस प्रकार कर्मों का त्याग करने पर भी यति धर्मों का पालन तत्परता से करता रहे। जब ऐसी स्थिति आजाय कि कुछ भी भेद भाव न रह जाय तब सन्यास आश्रम के चिन्हो का भी त्याग करके परमहंस हो जाय। जैसे ब्रह्मचारियो और वानप्रस्थियों के भी चार भेद हैं। सबसे अन्तिम स्थिति है परमहंस अवधूत की। उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। वह विधि निषेध के बन्धन से ऊपर उठ जाता है। उसे सब समय, सब में आत्मा का अनुभव होता रहता है। इसीलिये वह न कभी किसी का विरोध करता है न समर्थन। बालवत काल यापन करता है।

शौनक जी ने कहा—"सूत जी ! पहिले हमें आप सन्यासियों के भेद बतावें, फिर आप हमे परमहंस अवधूत की स्थिति विशेष रूप से समझावें। इन सब वातों को जानने की हमारी बडी इच्छा है।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है महाराज ! पहिले मैं सन्यासियों के भेद बताकर फिर परमहंस अवधूतों की रहनी सहनी बताऊँगा आप इस परम पावन पुण्य प्रसंग को प्रेम पूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

समुझै नहिँ सत कबहुँ दृश्यकूँ यति वैरागी।
अनासक्त नित रहै काम्य करमनि तैं त्यागी॥
मन वानी सघात रूप जग माया मानै।
नित परिवर्तन शील असत् नश्वर सब जानै॥
नेति नेति तैं बाध करि, नहिँ माया चक्कर परै।
थित ह्वै नित्य स्वरूप महँ, ब्रह्म एक निश्चय करै॥

—:o:—

सन्यासियों के भेद और परमहंस स्थिति

(१२८४)

ज्ञान निष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमास्त्यक्त्वा चरेदविधि गोचरः ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १८ अ० २८ श्लो०)

छप्पय

जगतैं होहि विरक्त ज्ञानमहँ अथवा थिरमति।
चाहै होवै भक्त कृष्ण चरननिमहँ दृढरति ॥
तजि वरणाश्रम चिन्ह मिलै भिक्षा जहँ खावै।
विधि निषेधतैं रहित मुक्त बन्धन ह्वै जावै ॥
बालकवत क्रीड़ा करै, जडवत् अरु उनमत्तवत।
पशुवत ह्वै चर्या करै, रहै न जग कारज निरत ॥

समस्त नियमों का पर्यवसान नियम रहित होने में है। समस्त संग्रहों का अन्त असंग्रह ही होने में है और समस्त ग्रहण का अन्त त्याग में है। पहिले अधर्म को, असत्य को छोड़ो। फिर धर्म को, ऋतु को छोड़ो। तदनन्तर जो बुद्धि यह धर्म है यह अधर्म है यह

---

*भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव! चाहे ज्ञान निष्ठ हो, विरक्त सन्यासी हो अथवा किसी भी वस्तु की अपेक्षा न रखने वाला मेरा भक्त हो, वह सभी आश्रमों को तथा उनके चिन्हों को छोड़कर विधि निषेध से परे होकर आनंद से विचरण करे।"

सत्य है यह अमृत है इसे निर्णय करती है उसे भी छोड़कर गुणातीत निर्द्वंद्व हो जाओ। अपने स्वरूप की आसक्ति के अतिरिक्त और जो भी कुछ है त्याज्य है अग्राह्य है। जो सीढ़ी सीढ़ी ऊपर चढ़ते हैं वे सबसे ऊपर चढ़ जाते हैं, जो सीढ़ियों को छोड़कर सब से ऊपर छलांग मारते हैं तो कोई विरले पहुँच भी जाते हैं, नहीं तो अधिकांश गिर कर चकना चूर हो जाते हैं। अतः एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाय। जब एक स्थिति दृढ़ हो जाय तब तृण जलौका की भाँति दूसरे को पकड़कर तब पीछे को छोड़े। इस प्रकार जो सम्हल सम्हल कर पैर रखते हैं वे निस्संदेह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी उद्धव जी से परमहंसो की चर्या बताते हुए कह रहे हैं—"उद्धव! सन्यासाश्रम नियम पालन के लिये नहीं। वह तो नियमातीत अवस्था प्राप्त करने के लिये है, किन्तु नियमातीत तभी होगा जब पहिले नियमों का पालन करेगा। अतः आरम्भ मे सन्यासी को सन्यास धर्म के सभी नियमों का पालन करना चाहिये। जैसे ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थियों के चार चार भेद बताये वैसे ही सन्यासियो के भी चार भेद होते हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! सन्यासियों के चार भेद कौन कौन हैं?"

भगवान् बोले—"कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस ये चार भेद सन्यासियों के हैं। अब इनके भेद सुनो।

१—कुटीचक—कुटीचक वह सन्यासी कहलाता है जो कुटी में रहकर अपने आश्रम धर्म का पूर्णरीत्या पालन करता है। कुटीचक सन्यासी शिखासूत्र का परित्याग नहीं करता। भिक्षा का भी उसका ऐसा आग्रह नहीं होता कि वह सात घरों में जाकर भिक्षा

लावे ही। उसके स्थान पर जो दे जाता है उसी को पाकर अपने नियमों में निरन्तर लगा रहता है। गृहस्थ से चौगुना शौ सन्यासी को बताया है उसी शौच का वह पालन करता है आश्रम के अनुसार जप तर्पण आदि करता है। साराश यह वह एक स्थान पर रहकर सन्यासधर्मों को ही तत्परता के सा पालता रहता है।

२—बहूदक—बहूदक सन्यासी एक स्थान पर नहीं रहता वह निरन्तर विचरता रहता है, एक स्थान से दूसरे स्थान मे दूसरे से तीसरे मे ऐसे घूमता रहता है। बहुत स्थानों का पान पीता रहता है। वह भी सन्यासी के नियमों का यथा शक्ति पालन करता है, किन्तु कर्म काण्ड की ओर उसकी रुचि गौण रहती है उसका प्रधान लक्ष्य ज्ञान ही है फिर भी उसकी कोटि साधक सन्यासियों में ही है वह साधना ही करता है अतः उसे सन्यासी धर्मो का पालन करना पड़ता है।

३—हंस—हंस वे सन्यासी कहाते हैं जो प्राणायामादि साधनों द्वारा ज्ञानाभ्यास मे निरन्तर तत्पर रहते हैं। किन्तु अभी ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है अतः इनकी भी अभी साधनावस्था ही है।

४— परमहंस वे सन्यासी कहलाते हैं। जिन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है। वे कर्म काण्ड की ओर से उदासीन होकर सर्वथा निष्क्रिय हो जाते हैं। उन्हें कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। उनके लिये न कोई विधि रहती है न निषेध। इस प्रकार सन्यासियों मे दो भेद हुए एक साधक या जिज्ञासु सन्यासी, दूसरे सिद्ध या पूर्व ज्ञानी सन्यासी। कतव्य आदि सब साधक या जिज्ञासु सन्यासियों के ही लिये हैं। सिद्धि प्राप्त होने पर कर्तव्य अकर्तव्य कुछ रह ही नहीं जाता।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! जिज्ञासु सन्यासी के क्या कर्तव्य हैं। उन्हें कैसे रहना चाहिये। किस प्रकार साधना करनी चाहिये, कृपा करके पहिले मुझे सन्यासियों के कर्तव्य कर्म बतावें। फिर परमहंस यतियों की रहनी सहनी का दिग्दर्शन करावें।"

भगवान् ने कहा—'उद्धव! ज्ञान एक ही जन्म में प्राप्त नहीं होता। ज्ञानवान् बहुत जन्मों के प्रयत्न से मुझे प्राप्त हो सकते हैं। सन्यास लेने पर भी सभी सन्यासियों को ज्ञान नहीं हो जाता। जो जिज्ञासु है, ज्ञान की प्राप्ति के लिये जिन्होंने सन्यास धारण किया है, ज्ञान के लिये सतत प्रयत्न करते हैं, किन्तु ज्ञान प्राप्ति के पूर्व ही मर जाते हैं, तो भी उन्हें फिर जन्म नहीं लेना पडता वे सन्यास धर्म के प्रभाव से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं, वहाँ वे ब्रह्मा की आयु पर्यन्त रहते हैं। ब्रह्माजी उनके ज्ञान की कमी को पूर्ण कर देते हैं। महा प्रलय मे जब ब्रह्माजी भगवान् मे लीन हो जाते हैं, तो उनके साथ ही उस जिज्ञासु सन्यासी की भी मुक्ति हो जाती है। ज्ञान योग का जिज्ञासु भी शब्द ब्रह्म का अतिवर्तन कर जाता है।

जो ज्ञान का या भगवत् तत्व का जिज्ञासु है उसकी सबसे मोटी पहिचान तो यह है कि ये संसारी विषय भोग विषवत् प्रतीत होते हैं। उसका ससारी किसी भी पदार्थ मे आकर्षण नहीं होता। कितनी भी सुन्दरी स्त्री हो उस का शरीर उसे शवके समान प्रतीत होगा। सुवर्ण में, मिट्टी मे उसकी स्वप्न में भी विषमदृष्टि न होगी। इन्द्रियों के सन्मुख उनके उत्तम से उत्तम विषय रखे रहे उसकी इन्द्रियो मे उनसे तनिक भी चचलता न होगी।

एक जिज्ञासु एक सन्यासी के पास गया और उसने प्रार्थना की कि मुझे सन्यास धर्म की दीक्षा दे दें।

सन्यासी ने पूछा—तुम जिज्ञासु हो, इसका क्या प्रमाण है?

जिज्ञासु ने कहा—"भगवन् ! मेरी परिचा करलें।"

तव सन्यासीजी ने कहा—"अच्छा, जीभ निकालो।" जिज्ञासु ने जीभ निकाली महात्मा ने एक चुटकी सुन्दर स्वच्छ शर्करा उसकी जीभ पर रखदी। कुछ देर तक बैठे रहे। फिर फूँक मारी। सब शर्करा सूखी हुई उड़ गयी। जीभ मे तनिक भी जल नहीं आया। तब उन्होंने कहा—"हाँ, तुम दीक्षा लेने के अधिकारी हो।"

कहने का सारांश यह कि विषयों की ओर मनमे तनिक आसक्ति न हो तथा जिसे भागवत धर्मों की पूर्ण जिज्ञासा हो वही जिज्ञासु है। वही सन्यास लेने का अधिकारी है। संसार से तो उसे विरक्ति हो गयी है, किन्तु अभी उसने भागवत धर्मों को जाना नहीं है, उसे सर्व प्रथम सद्गुरु की शरण लेनी चाहिये उन गुरुदेव में और मुझ सर्वव्यापक देव मे अभेद भाव रखे। उनकी सेवा शुश्रूषा अत्यंत भक्ति भाव तथा आदर भाव से करता रहे। सर्वदा उनकी सन्निधि मे ही रहे। सद्गुरु की निरन्तर की सेवा से शनैः शनैः उसकी सभी शंकाओं का समाधान हो जायगा और उसे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होगी, जब ब्रह्मज्ञान होजाय तब चाहे तो स्वच्छन्द विचरे। जबतक ज्ञान हो, तबतक एक सच्चे जिज्ञासु के सदृश उनकी समस्त आज्ञाओं का पालन करता रहे। उनके किसी कार्य क आलोचाना न करे और न उनके प्रति अश्रद्धा के भाव ही व्यक्त करे

जबतक पूर्ण ब्रह्मज्ञान न हो तबतक सदा संयम से रहे। कभी आलस्य और प्रमाद न करे, निरन्तर जागरूक बना रहे। अपने शत्रुओं से सदा युद्ध करता रहे और मेरा स्मरण भी करता रहे। जो साधक अपने शत्रुओं को दबाये रहेगा उसकी विजय होगी और जो शत्रुओं के अधीन हो जायगा, उसकी पराजय तथा पतन तो अनिवार्य है ही।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! शत्रु कौन हैं ?

भगवान् ने कहा—"काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये ही छै प्रबल शत्रु हैं जिसने इन्हें जीत लिया उसने ससार को जीत लिया वह आवागमन के चक्कर से सदा के लिये छूट गया। जो इनके अधीन हो गया वह ससार मे और भी अधिकाधिक जकड गया। देखो, उद्धव! यह देह रथ है। देही रथी है। पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ इस देहरूप रथ के घोडे हैं बुद्धि ही सारथी है। बुद्धि रूप सारथी यदि मन रूपी लगाम से इन्द्रिय रूपी घोडो को वश मे रखेगा, तब तो ये सन्मार्ग की ओर बढेंगे, यदि तनिक भी ढिलाई कर दी तो ये कुमार्ग की ओर दौड कर खदक मे गिरा देगे, संसार रूपी अध कूपमे पटक देंगे। इसलिये इन्द्रियो को सदा वश में रखना चाहिये। काम क्रोधादि षड रिपुओ पर विजय करना चाहिये।

मोक्षका मार्ग बडा दुर्गम है, इसमे वही चल सकता है, जिसके पास यथेष्ट पाथेय हो, जो पाथेय से शून्य है, वह इस मार्ग मे कभी आगे बढ नहीं सकता। वह इस पथ का पथिक होने के अधिकारी नहीं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! मुक्ति पथ का पाथेय क्या है ?"

भगवान् ने कहा—"ज्ञान और वैराग्य ये ही मुक्ति पथके पाथेय हैं। जिसके पास ये पाथेय है वह सुख पूर्वक गन्तव्य मार्ग तक पहुँच सकता है, फिर चाहे उसने सन्यासी का बाह्यवेष बनाया हो या न बनवाया हो किन्तु जिसके पास ये पाथेय नहीं, उसने चाहें वस्त्रो की तो बात ही क्या सम्पूर्ण शरीर को चाहे गेरू से क्यों न रँग लिया हो, कितने भी दड क्यो न ले लिया हो, कितना भी चिकना कमन्डलु उसने धारण कर लिया हो। वह दम्भी है,

पाखंडी है, धूर्त है, वेप को कलंकित करने वाला है। वह अजितेन्द्रिय केवल पेट भरने के लिये साधु का वेप बनाये हुआ है वह यतिधर्म का दूषक है वह ससारी लोगोंको ठगता है,अपने यजनीय देवताओं की वंचना करता है, अपने को ठगता है तथा किसी से भी न ठगा जाने वाला मुझ सर्वान्तर्यामी को भी ठगने का प्रयत्न करता है। जो ज्ञान वैराग्य से शून्य है अजितेन्द्रिय है और सन्यासी का बाना बनाए हुए है ऐसा मूढ तो उभय भ्रष्ट है, उसका न यह लोक ही बनता है न परलोक ही बनता है, दोनों ही ओर से मारा जाता है। "इतो भ्रष्ट स्ततो भ्रष्टः" हो जाता है जिस आश्रम में रहे उस आश्रम के मुख्य धर्मों का पालन अवश्य करे। तभी वह कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर हो सकता है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! किस-किस आश्रम के कौन-कौन मुख्य धर्म हैं ?"

भगवान् ने कहा—"ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है गुरु शुश्रूषा। गुरु सेवा में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है ब्रह्मचारी सदा गुरु सेवा में संलग्न रहे तो वह सभी पापों से स्वाभाविक ही बच सकता है। गृहस्थी के मुख्य धर्म हैं प्राणिमात्र की रक्षा करना और अपने आश्रम और शक्ति के अनुसार यज्ञ करते रहना इन दो में उसके सभी धर्म आ जाते हैं। वानप्रस्थी के मुख्य धर्म हैं तप और ईश्वर चिन्तन। भगवान् का चिन्तन करते हुए निरन्तर तप में ही लगा रहे। इसी प्रकार सन्यासी के मुख्य धर्म दो हैं भीतर बाहर की शान्ति और अहिंसा व्रत का पालन करना। जिसने प्राणि मात्र को अपनी ओर से अभय दान दे दिया है जिसने इन्द्रियों की चंचलता को मेट कर छः रिपुओं पर विजय करके शान्ति स्थापित कर ली है वही यति यथार्थ में यति कहलाने का अधिकारी है। ब्रह्मचर्य,

तपस्या, शौच, सन्तोष, तथा प्राणिमात्र पर दया रखना ये सब के लिये आवश्यक धर्म हैं।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और सन्यासी के लिये तो ब्रह्मचय व्रत उचित ही है, किन्तु यदि ब्रह्मचर्य व्रत गृहस्थी भी धारण करे, तो उसका काम कैसे चले?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! जो गृहस्थ अपनी ही पत्नी में सन्तुष्ट है और केवल ऋतु गामी ही है, वह भी ब्रह्मचारी ही है। गृहस्थो के लिये ऐसे ही ब्रह्मचर्य का विधान है। इन सब धर्मो के ऊपर है मेरी भक्ति। चाहे कितना भी तप करो, कितने भी नियमों का पालन करो, किन्तु मेरी भक्ति न हो तो सब व्यर्थ है। मेरी भक्ति मे वर्ण आश्रम का कोई बन्धन नहीं किसी भी वर्ण का हो, किसी भी आश्रम का हो, किसी भी देश का रहने वाला हो, किसी भी सम्प्रदायका हो, मेरी भक्ति का अधिकारी मनुष्य मात्र माना गया हैं। मेरी उपासना करना प्राणिमात्र का परम धर्म है। कहीं भी रहे, किसी भी वर्ण का हो, किसी आश्रम का हो अपने धर्म का पालन करे और सम्पूर्ण प्राणियों मे मेरी भावना करके जो अनन्य भाव से मेरा भजन करता है, उसे ही मेरी विशुद्ध भक्ति की प्राप्ति होती है। सन्यासी है त्याग वैराग्य के साथ शान्ति और अहिंसा धर्म का पालन करतेहुए मेरी उपासना में लगा रहता है वह अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जाता है। मुझे प्राप्त करना ही तो प्रणियों का चरम लक्ष्य है। मैं ही इन सम्पूर्ण लोकों का एक मात्र स्वामी हूँ। जगत् की उत्पत्ति मुझसे ही है, मेरी ही शक्ति से यह स्थित है और अन्त में मुझमें ही लीन हो जाता है। चराचर विश्व का एक मात्र कारण मैं ही हूँ, जिसने मुझे प्राप्त कर लिया फिर उसके लिये प्राप्त करने को शेष ही क्या रह

जाता है। मैं प्राप्त होता हूँ केवल एक मात्र अनपायिनी भक्ति द्वारा ही।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन ! स्वधर्म पालन का फ क्या है ?"

भगवान् ने कहा—"स्वधर्म पालन रूप कर्म से अन्तः कर निर्मल हो जाता है। स्वच्छ अन्तः करण में मेरा स्वरूप भास लगता है। क्योंकि मैं सब के अन्तः करण में विराज मान हूँ। कोई दर्पण है। उसके ऊपर धूलि जम गयी है, उसमें मुख दिखायी नहीं देता तो हमें उसमें मुख दीखने के लिये कहीं से कोई वस्तु लाकर रखनी न पड़ेगी। एक वस्त्र लेकर शनैः शनैः उसकी जमी हुई धूल को पोंछ दो। जहाँ धूलि हट गयी, वहीं उसमें मुख दिखायी देने लगेगा। स्वधर्म पालन से जहाँ अन्तः करण मल रहित हुआ तह मेरे ऐश्वर्य का ज्ञान होने लगता है। ससार से वैराग्य हो जाता है। ऐसा ज्ञान विज्ञान सम्पन्न विरक्त पुरुष शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये सभी अपने-अपने धर्मों का अधिकारानुसार पालन करें तो यह उनका धर्म है आचार है। इनके पालन से उन-उन लोकों की श्री और यश की प्राप्ति होगी। इन धर्मों से स्वर्गादि लोक प्राप्त होंगे। किन्तु ये ही सब धर्म मेरी भक्ति से युक्त होकर किये जायँ तो परम निःश्रेयस के कारण हो जाते हैं। जैसे गृहस्थ है। स्वधर्मों का पालन करता है तो उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होगी यदि वही मेरी भक्ति से युक्त होकर स्वधर्म पालन करता है तो वह गृहस्थी में रह कर भी मुक्ति का अधिकारी होगा। इसी प्रकार सन्यासी यदि सन्यास धर्म का पालन करता है तो उसे सत्य लोक की प्राप्ति होगी यदि वह भक्ति युक्त होकर सन्यास धर्मों का पालन करता है तो वह यहीं परम पद का अधिकारी हो जाता

है। ये मैंने संक्षेप में जिज्ञासुयति के धर्म बताये। अब तुम और यक्ष पूछना चाहते हो ?"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! आपने कुटीचक, बहूदक, हंस इन तीन सन्यासियों की साधक संज्ञा बतायी और परमहंसों को सिद्ध कहा। अब मैं जानना यह चाहता हूँ कि परम हंसोंकी कैसी स्थिति होती है ?"

भगवान् ने कहा—"परमहंसो के कोई नियम नहीं वे तो नियमों से परे हो जाते हैं। वास्तव मे बुद्धि के भण्डार होते हैं, किन्तु बच्चो की भाँति खेल करते है। बच्चो के साथ बच्चे बन जाते हैं, खेलने लगते हैं। वे सब संसार की गति विधि जानते हैं, किन्तु देखने मे ऐसे भोले भाले दीखते हैं मानो कुछ जानते ही नहीं। किसी की बात का विरोध नहीं करते। प्रत्येक घटना को देखकर हँस जाते हैं। समझते हैं ये गुण गुणो मे वर्त रहे हैं, किन्तु बातें करेंगे, तो ऐसी मानों ये कुछ जानते ही नहीं। कभी कभी आचरण भी ऐसे करेंगे, कि लोग उन्हें मूर्ख समझने लगे। खड़े खड़े ही लघुशंका कर दी। स्नान ही नहीं किया। पशुओं की भाँति पानी पीने लग जायँ। कभी पंडितो का सा आचरण करने लगे सारांश यह है कि उनके लिये कोई नियम नहीं रह जाता।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! परमहंस गति ही सबसे अन्तिम गति है। मै परमहंस धर्मों के विषय में कुछ विशेष सुनना चाहता हूँ। कृपा करके परमहंसों की रहनी सहन तथा उनकी चर्याका का विस्तार से वर्णन करें!"

यह सुनकर भगवान् हँसे और बोले—"उद्धव ? परमहंसों की गति तो जगत् से भिन्न ही हैं। वे नित्य अपने रूप में स्थित होकर परमानन्द में निमग्न बने रहते हैं। वे संसारी निन्दा स्तुति से परे रहते हैं। अच्छी बात है मैं कुछ परमहंसों को गति के सम्बन्ध में सुनाता हूँ ।"

सूत जी कह रहे हैं-' मुनियो ! भगवान् ने जैसे परमहंसों स्थिति के सम्बन्ध मे कहा, उसे मैं आप से कहता हूँ, आप स समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

यदि होवे जिज्ञासु सिद्ध गुरु के ढिँग जावे।
मन इन्द्रिनिकूँ रोकि हृदयकूँ शुद्ध बनावे॥
शान्ति अहिंसा ज्ञान धारि वैराग्य जगततैं।
मोमें राखै चित्त मोरिके मुखकूँ इततैं॥
वर्णाश्रमके धर्म सब, पाले मम सेवा करै।
काहू आश्रममहँ रहै, अनायास जग तैं तरै॥

— o —

पारमहंस्य चर्या

(१२८५)

बुधो बालकवत्क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ।
वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १८ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

परमहंस सब त्यागि कर्म मय वेदवाद रति ।
रहै धीर गम्भीर अमानी सहनशील यति ॥
सुख दुखमहँ सम रहै रहैं जैसे हों माधव ।
लीला सम सब करै दैव आधीन समुझि सब ॥
भिक्षाकूँ औषधि समुझि, खाइ उदर केवल भरै ।
फट्यो पुरानो जो मिलै, पट ताकूँ धारन करै ॥

स्वाभाविकता से हट कर ज्यों ज्यों मनुष्य अस्वाभाविकता की ओर बढ़ता है, त्यों ही त्यों वह पतित होता जाता है। भगवान् की माया तो देखिये वह अवनति को

---

*भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव ! परमहंस यति बुद्धिमान् होने पर भी बालकों के सदृश क्रीड़ा करे। कुशल होने पर भी जड़ के समान आचरण करे। विद्वान् होने पर भी उन्मत्त के समान भाषण करे। निगम आगम की विधि को जानकर भी पशु के सदृश व्यवहार करे।"

उन्नति समझ कर बढ़ता है, विनाश की ओर पग बढ़ाते हुए भी अपने को अमृतत्व की ओर जाता हुआ अनुभव करता है। छोटा सा सरल स्वाभाविक शिशु है। उसके लिये न कोई अपना है न पराया। जो भी स्तन उसके मुख में दे दो उसी को पीने लगेगा। चाहे जिसकी गोद में चला जायगा। जो दे दो उसे मुख में रख लेगा। नीच ऊँच, मान अपमान, अपना पराया, अच्छा बुरा उसके लिये कुछ नहीं। ज्यों-ज्यों वह बढ़ता जाता है त्यों-त्यों अपने पराये का भाव उसका बढता जाता है। ये सुहृद् हैं ये शत्रु हैं ये सम्बन्धी हैं ये उपेक्षणीय हैं। कैसे व्यवहार चलाया जाता है, कैसे दूसरों को ठगा जाता है यही बातें वह सीखता है। माता पिता भी कहते हैं लड़का अब चतुर हो गया है। अपने पराये का विवेक करने लगा हैं। हानि लाभ अनुभव करने लगा है। ज्यो-ज्यों बढ़ता जायगा त्यों-त्यों उन्नत होता जायगा। यही मूढ़ता है यही अज्ञान है यही बन्धन का कारण है। अस्वाभाविकता को छोड़कर पुनः स्वाभाविकता की ओर आना। बड़े बनने के अभिमान को त्याग कर पुनः बालकवत् व्यवहार करना। चतुरता को छोड़कर पुनः उन्मत्तों के सदृश लोक से बाह्य होना, यही ज्ञान की चरम स्थिति है। जगत् से मुख मोड़कर जगत्पति की शरण में जाना उन्हें ही अपना सर्वस्व समझना यही यथार्थ उन्नति है। समस्त साधन इसी स्थिति को प्राप्त करने के निमित्त हैं।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"ऋषियो! जब उद्धवजी ने परमहंसों की रहनी-सहनी और स्थिति के सम्बन्ध में भगवान् से पुनः प्रश्न किया, तो भगवान् कहने लगे—"उद्धव! परमहंस मुनि स्वच्छन्द होकर विचरे। कर्मकाण्ड का विशेष व्याख्यान आदि न करे, वेद-वाद में निरत न रहे। लोगों को

ठगने को व्यर्थ वेष धारण न करे। न कभी किसी प्रकार के पाखण्ड का ही आश्रय ग्रहण करे। जहाँ लोग कोरा वाद विवाद करते हों, वहाँ अधिक न बैठे-बैठना ही हो तो किसी का भी पक्ष लेकर उस वाद-विवाद में सम्मिलित न हो। उपनिषद् वचनों में श्रद्धा रखे, केवल तर्क परायण न बने। अपने को बहुत सम्मानित प्रदर्शित न करे। कोई भी ऐसा कार्य न करे जिससे लोगों में उद्वेग उत्पन्न हो जाय। न तो स्वयं किसी से उद्विग्न हो न किसी अन्य को अपने से उद्विग्न होने दे।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! उद्वेग किन कारणों से होता है?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! उद्वेग का प्रधान कारण है सम्मान की इच्छा। जो अपने को सम्मानित समझता है और दूसरे लोग उसका उतना सम्मान नहीं करते, तो वह स्वयं उद्विग्न होता है और दूसरों को उद्वेग उत्पन्न कराता है। यदि कोई उसका अपमान करदे, तब तो कहना ही क्या? परमहंस यति को मान सम्मान के चक्कर में कभी भूलकर भी न फँसना चाहिये जितना भी हो सके निन्दा आदि को सहन करे। निन्दा के सहन से तप की वृद्धि होती है। सम्मान से तप क्षीण होता है। इसलिये सम्मान की स्वप्न में भी आकांक्षा न करे और किसी दूसरे को भूलकर भी अपमान न करे। लड़ाई-झगड़ा भी न करे। लड़ाई के प्रधान तीन कारण पत्नी, पृथिवी और पैसा। इन तीनों का तो यति मन से त्याग ही कर चुका है। उसे केवल उदर भरने को रूखा-सूखा जैसा भी मिल जाय अन्न चाहिये। उस भोजन के लिये भी पशुओं की भाँति लड़ाई न करे। पशु भी तो कुछ संग्रह नहीं करते। किन्तु भोजन के पीछे लड़ पड़ते हैं। ऐसा पशुवत् व्यवहार कभी भूल से भी न करे। जो भी मिल जाय

उसी मे सन्तुष्ट रहे। कभी कभी समय पर भिक्षा न भी मिले मन में दुःख न माने कि देखो कैसा समय आ गया लोग को भोजन भी नहीं देते। और कभी किसी ने सम्मान सुन्दर भिक्षा करा दी तो हर्षित न हो। यह विचार करले कि संसार में कौन किसी को खिलाता है, कौन किसका सम्मान अपमान करता है। यह सब तो दैवाधीन है। सब अपने अपने प्रारब्ध कर्मों के अनुसार भोग-भोग रहे हैं। जिसका जब जिससे जैसा सम्बन्ध होना होता है उसका तब तिससे तैसा सम्बन्ध हो ही जाता है। आहार के लिये बहुत प्रयत्न भी न करे और इस बात का हठ भी न करे कि कोई बिना माँगे देगा तभी खायँगे। बहुत भूख लगे तो केवल आहार मात्र के लिये चेष्टा भी कर ले। इधर उधर जाकर भिक्षा भी माँग लावे। क्योंकि प्राणों की रक्षा करना परमावश्यक है। जब शरीर मे स्वस्थ प्राण रहेंगे तभी तो तत्व चिन्तन करने में मन भी लगेगा। परमपद अथवा मोक्ष का सा धन यह शरीर ही तो है। भूख प्यास यह प्राणों का ही धर्म है। शरीर में प्राण रहेंगे तो परमार्थ साधन बन सकेगा उसके द्वारा आत्म स्वरूप का साक्षात्कार होगा। आत्म-ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है। इसलिये अन्न को स्वाद के लिये नहीं प्राण धारण के लिये खाय। यह विचार न करे कि यह अच्छा अन्न नहीं है। स्वादिष्ट नहीं है सुन्दर थालों मे सजाया नहीं। सम्मान पूर्वक लाया हुआ नहीं है। प्रारब्ध वश जैसा भी अन्न मिल जाय। अच्छा या बुरा, रूखा या चिकना उसी को खाकर प्राण रक्षा करे। चाहे तो दिगम्बर रहे। यदि कपडा पहिनना ही हो तो फटा पुराना जैसा भी मिल जाय उसे शरीर मे लपेट भूमि मिल जाय वहीं लेट रहे। कहीं बिछौना मिल जाय उसी पर पड़ रहे, किन्तु इसके लिये प्रयत्न न करे। सर्वत्र मुझे ही देखे। पात्र

भेद से जैसे सूर्य बहुत से दीखते हैं, किन्तु हैं वास्तव में एक ही सूर्य वैसे ही सब में आत्मरूप से मैं ही अवस्थित हूँ, और देह भी सब पंच भूतों के निर्मित हैं, फिर भेद भाव या द्वैत के लिये स्थान ही कहाँ है !"

परमहंस विधि निषेध के चक्कर में भी न पड़े ? वैसे स्वभावानुसार शौच रखे। स्नान कर ले भोजन के आदि अंत में आचमन करें किन्तु ऐसा करना हो चाहिये। इस शास्त्र विधि मे बंधकर न करे। लाला पूर्वक करता रहे। उद्धव ! तुम जानते ही हो तीनों लोकों में मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है फिर भी मैं लीला पूर्वक सभी कुछ करता ही हूँ, इसी प्रकार ज्ञाननिष्ठ परमहंस सब कर्मों को लीला पूर्वक करता रहे। यह संसार कुछ है थोड़ा ही। शशक का जैसे सींग, बन्ध्या का जैसे पुत्र ऐसे ही यह संसार है। इसमें एकमात्र मैं ही सत्य हूँ। जिसे मेरा साक्षात्कार हो जाता है। उसके लिये यह संसार उसी प्रकार नहीं रहता जिस प्रकार अँधेरे घर में प्रकाश आ जाने पर अँधेरे नहीं रहता। इसी प्रकार ज्ञानी की दृष्टि में यह संसार रहता ही नहीं। फिर भी यह देह तो अज्ञान से उत्पन्न हुआ ही है। जब तक देह है तब तक प्रारब्ध वश कभी कभी संसार की प्रतीति हो ही जाती है। ज्ञानी इसके लिये भी कोई चिन्ता न करे। जब तक देह रहे तब तक मेरे ध्यान में निमग्न रहे देह का अन्त होने पर तो यह मुझ में मिल ही जायगा।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! यह तो आपने बहुत ही ऊँची स्थिति बताई।" मनुष्य शरीर तो चिंताओं का घर है। कुछ भी संग्रह न करो तो भी नाना प्रकार की चिन्तायें आकर मन को उद्विग्न करती ही रहती हैं। मन तो एक क्षण को भी स्थिर नहीं होता। इस प्रत्यक्ष दीखने वाले संसार की उपेक्षा कैसे की जा

सकती है। इस शरीर से ही जीवन्मुक्ति का आनंद क्या संभव है।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! संभव न होता तो मैं वेद शास्त्रों में इसका वर्णन ही क्यों करता असंख्यों ज्ञानी इस शरीर से ही जीवन्मुक्ति का आनंद लेकर मुझ में मिल गये हैं। ऐसे ही एक जीवन्मुक्त महापुरुष भक्तवर प्रह्लाद को मिले थे। उनकी स्थिति देखकर वे परम विस्मित हुए। उन्हीं से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। उनका सम्वाद बड़ा ही शिक्षाप्रद है। संसार में सदा से ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष रहे हैं और अब भी हैं तुम इसमें सन्देह मत करो।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! भक्तराज प्रह्लादजी की किन परमहंस यति से भेंट हुई और उन दोनों का परस्पर में क्या सम्वाद हुआ, कृपा करके इस आख्यान को आप हमें सुनावें। एक तो प्रह्लादजी ही परम भागवत तथा भगवद्भक्तों में मुकुट मणि हैं, फिर उनका सम्वाद एक जीवन्मुक्त महा पुरुष से हुआ होगा, तब तो उन दोनों में बड़ी ही सुन्दर बातें हुई होंगी। उनका सम्वाद तो संसार बन्धन को काटने के लिये परम उपयोगी हुआ होगा, उसे हमारी सुनने की बड़ी ही प्रबल इच्छा है, यदि आप हमे उसका अधिकारी समझते हों तो अवश्य सुनावें।"

इस पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सूतजी बोले—'भगवन् ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही परम सुख कल्याण प्रद उन परमहंस मुनि का और प्रह्लादजी का वह सम्वाद है। उसे मैं आपको सुनाता हूँ।"

एक बार दैत्यराज प्रह्लादजी लोक तत्त्व की जिज्ञासा के निमित्त अपने कुछ तत्वज्ञानी मन्त्रियों के सहित तीर्थ यात्रा के प्रसंग से पृथिवी के प्रसिद्ध अप्रसिद्ध स्थानों में विचरण करने लगे। वे बड़े

बड़े तीर्थों में गये। प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऋषि मुनियो से मिले और बहुत से भगवद्भक्तों से भी उन्होंने भेंट की। इसी प्रकार घूमते-फिरते वे दक्षिण देश की ओर चले गये। वहाँ सह्य पर्वत पर इधर उधर भ्रमण करने लगे। वहाँ भगवती-कावेरी अपने कल-कल शब्द से प्रवाहित होती हुई सह्य पर्वत की शिलाओं से अठखेलियाँ कर रही थी। कावेरी के किनारे-किनारे सघन वन था। हिंसक जन्तु उन वनों में स्वच्छन्द विहार कर रहे थे। प्रह्लादजी सह्य पर्वत की तथा कावेरी के कूलों की कमनीय छटा निहारते हुए सुख पूर्वक भ्रमण कर रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक नगे पुरुष क ऊपर पड़ी। सह्य पर्वत पर कावेरी के तट पर सुकोमल बालुका पडी थी। उसी पर एक नग धडगे महात्मा लेट लगा रहे थे। उनके मुख मडल से एक विचित्र विमल तेज निकल रहा था। वे आनंद सागर मे निमग्न हुए पडे थे। उनका सम्पूर्ण शरीर धूलि धूसरित था। शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं था। दशों दिशायें ही उनका अम्बर था। वे पागलों की सी चेष्टा कर रहे थे। कभी खिल-खिला कर हँस पडते। कभी अपने आप कुछ कहने लगते। कभी उठकर बैठ जाते। कभी फिर लेट जाते। कभी पानी को थप थपाने लगते उनके कर्मों को देखकर, उनके धूलि धूसरित नग्न शरीर को देखकर उनकी व्यर्थ की बातों को सुनकर तथा शिखा सूत्र तथा किसी भी बाह्य चिन्हों को देख कर कोई यह नहीं कह सकता था कि ये कोई सिद्ध महापुरुष हैं। साधारण लोग तो उन्हें देखकर यही समझते थे, कि यह कोई पागल उन्मत्त हैं। उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। इसीलिये यह ऐसी अट सट चेष्टाये करता रहता है, किन्तु प्रह्लाद जी तो परम भागवत थे। वे तत्वज्ञान में निष्णात थे। उन्हें ज्ञानियों की रहनी सहनी और चर्या का ज्ञान था, अतः

वे देखते ही समझ गये, कि ये कोई ज्ञानी परमहंस यति हैं। आज मेरी यात्रा सफल हुई। इस शान्त एकान्त निर्जन वन में ऐसे तत्वज्ञानी अवधूत के दर्शन हुए। वे तुरन्त दौड़ कर मुनि के समीप गये, दूर से ही पादत्राण उतार कर दोनों हाथों की अंजलि बाँध कर वे मुनि के निकट पहुँचे। उनके चरणों में अपना मस्तक रख कर उन्होंने विधिवत् मुनि को प्रणाम किया, फिर यथा लब्धोपचारों से वन के पत्र पुष्प तथा फलों से मुनि की पूजा की और हाथ जोड़ कर उनके सम्मुख बैठ गये। वे परमहंस मुनि आनंद से पड़े ही रहे। उन्होंने न प्रह्लाद जी की पूजा की ओर ध्यान दिया न उनका अभिनंदन ही किया। प्रह्लाद जी की ओर देखकर मंद मंद मुस्कराते रहे। उनकी प्रसन्न आकृति को देखकर प्रह्लाद जी का साहस बढ़ा वे हाथ जोड़कर उनसे बोले—"ब्रह्मन! मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ, आज्ञा हो तो कुछ पूछूं।"

यह सुन कर वे परमहंस महामुनि खिल खिला कर हँस पड़े और सिर हिला कर संकेत किया "हाँ पूछो।"

तब प्रह्लादजी बोले—"ब्रह्मन्! पूछना मैं यह चाहता हूँ, कि आपका यह शरीर इतना सुन्दर सुगठित और मोटा कैसे हो गया।"

यह सुनकर परमहंस मुनि अट्टहास करते हुए बोले—"यह क्या प्रश्न हुआ। शरीर कोई मोटा होता है कोई पतला होता है। यह शरीर मोटा है। क्या तुमने संसार में मोटे शरीर वाले पुरुष नहीं देखे हैं?"

प्रह्लादजी ने शीघ्रता से कहा—"हाँ, महाराज! मैंने संसार में बहुत से मोटे आदमी देखे हैं। आपसे मोटे देखे हैं, किन्तु मोटे प्रायः वे ही होते हैं जो धनी होते हैं क्योंकि धन के बिना मुटाई आ ही नहीं सकती। धन होगा तभी दूध, मलाई, रबड़ी, पूड़ी,

कचोडी, खीर हलुआ आदि वस्तुएँ खाने को मिलेंगी। इन्हीं वस्तुओं से शरीर मोटा होता है। निर्धनों के पास धन नहीं होता। इससे वे मोटे भी नहीं होते। धन प्राप्त होता है उद्यम से। व्यापार में ही लक्ष्मी का वास है। मैं देखता हूँ आप कोई उद्यम तो करते नहीं। एकान्त वन में पडे रहते हैं। न कहीं व्याख्यान देने जाते हैं न व्यापार करते हैं न राजद्वार में अभियोगों की ही सम्मति देते हैं। जिन कामो से रुपया पैसा प्राप्त होता है उन कामो से एक भी काम आप नहीं करते। फिर भी धनिकों के सदृश—अच्छे योगी पुरुषों के समान आप हृष्ट पुष्ट और मोटे हैं। इसीलिये मुझे आश्चर्य हो रहा है कि बिना धन के यह मुटाई आपके शरीर मे कैसे आ गयी।"

हँस कर परमहंस बोले—"भैया! क्या सभी उद्योगी पुरुष धन प्राप्त कर लेते हैं?"

प्रह्लादजी ने कहा—"महाराज! उद्योग करने पर भी किसी को धन प्राप्त न हो यह तो प्रारब्ध की बात है, किन्तु उद्योग से धन प्राप्त होता ही है। आप चाहते तो धन प्राप्त कर सकते थे। मैं देखता हूँ आप असमर्थ आलसी या अयोग्य नहीं हैं। आपकी बातों से ही प्रतीत होता है। आप लोक व्यवहार में दक्ष हैं। आपकी वाणी मे कितना स्वारस्य है, कितनी मधुरिमा है कितना आकर्षण है। एक बार कोई आपका प्रफुल्लित मुख देख ले आप की मीठी मीठी वाणी सुन ले वह आपके अधीन हो जाय। लोगों को वश मे करने की कला भी आप जानते हैं। इतना सब होने पर भी आप कोई काम नहीं करते। अयोग्य पुरुष रात्रि दिन कर्मों में व्यग्र बने रहते हैं, किन्तु इतनी योग्यता होने पर भी आपकी इच्छा किसी कार्य में प्रवृत्त होने की नहीं होती। आप सर्वदा उदासीन भाव से पडे पड़े एक दर्शक की भाँति-निरपेक्ष

भाव से जगत् के व्यवहारों को देखते रहते हैं इसका कारण है ?"

यह सुन कर परमहंस मुनि फिर खिला खिला कर हँसे और उठकर बैठ गये। तदनंतर अत्यंत स्नेह के साथ प्रह्लादजी को सम्बोधित करते हुए बोले—प्रह्लादजी ! मैं आपको जानता हूँ। यदि कोई सांसारिक साधारण मनुष्य ऐसी बात पूछता तो उसे हँस कर टाल देता। या तो उसका कुछ उत्तर ही न देता या उन्मत्तों की भाँति कुछ ऐसी ही अटपटी चेष्टा करके उसे टरका देता। किन्तु तुम तो भक्त शिरोमणि हो। साधु-समाज में आप सम्मानित समझे जाते हैं। शत्रु भी आपके सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं और आपके आचरणों को प्रामाणिक मानते हैं। आप ज्ञानी हैं। आप जानते हैं कि प्रवृत्ति मार्ग का क्या परिणाम है और निवृत्ति मार्ग का क्या परिणा है। तुम भगवान् के अनन्य भक्त हो, तुम्हारी अहैतुकी भक्ति से श्रीमन्नारायण सदा तुम्हारे हृदय में वास करते हैं, जहाँ सच्चिदानंद ज्ञान स्वरूप भगवान् का निवास है वहाँ अज्ञान रह ही कैसे सकता है। जहाँ सूर्य का प्रकाश विद्यमान है वहाँ अन्धकार का अस्तित्व असंभव है। इस लिये आपके प्रश्नों का उत्तर देना प्रत्येक परमार्थ पथ के पथिक का प्रधान कर्तव्य है। जिन्हें अपने अन्तःकरण को विशुद्ध बनाने की इच्छा हो उन्हें आपका सम्मान अवश्य करना चाहिये। इसी लिये इस विषय में मैंने जो कुछ सुना है अनुभव किया है, उसे मैं आपको बताता हूँ। हाँ, तो आपका प्रथम प्रश्न यह है कि आप कौन हैं ? आप मेरा परिचय प्राप्त करना चाहते हैं।

मैं अपना परिचय आप को क्या दूँ ? राजन् ! यह देह तृष्णा से ही उत्पन्न होता है। तृष्णा बड़ी प्रबल है। इसका पेट बहुत बड़ा है। कितना भी आहार क्यों न करले यह तृष्णा कभी

शान्त नहीं होती। बाल पक जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर बूढ़ा हो जाता है, किन्तु तृष्णा सदा तरुणी ही बनी रहती है। यही नहीं वृद्धावस्था में यह और भी बलवती हो जाती है। आज जो इच्छा उत्पन्न हुई, उसे भोग कर भी तृष्णा शान्त न होगी भोग पाने से वह और भी अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। जैसे चक्रवृद्ध व्याज निरन्तर बढ़ता ही रहता है। इस तृष्णा से ही जन्म मरण का चक्र निरन्तर चलता रहता है। तृष्णा के ही कारण जीव नाना योनियों में भ्रमण करता रहता है चौरासी के चक्कर मे घूमता रहता है। राजन् उसी तृष्णा के अधीन होकर मैं भी अनेक योनियों में घूमता रहा कभी बाघ हुआ कभी सिंह हुआ, कभी पशु, पत्ती, वृक्ष तथा कीट पतंग हुआ। उन उन योनियों में जाकर उनके अनुरूप मैं अनेकों अनुकूल प्रतिकूल कर्म भी करता रहा। इस कुटिनी तृष्णा ने अनेक योनियों मे मुझसे अनेक कर्म कराये। अनेक योनियों के सुख दुख भुगवाये। तृष्णा के कारण कर्मों की प्रेरणा से भवसागर में भटकते भटकते प्रारब्ध वशात् मुझे मनुष्य योनि प्राप्त हुई, जो मोक्ष का द्वार है।

प्रह्लादजीने पूछा—"भगवन्! क्या मनुष्य योनि में आकर सभी मुक्त हो जाते हैं? आप मनुष्य योनि को मोक्ष का द्वार क्यों बताते हैं?"

अवधूत परमहंस बोले—"राजन्! सभी मनुष्य मुक्त नहीं हो जाते, किन्तु मुक्ति प्राप्त करने की यही एक योनि है। और योनि के जीव या तो स्वभावतः ऊपर की योनियों में जायँगे या अपने से नीचे की योनियों में जायँगे। कुछ जीव अधोगामी होते हैं कुछ अपने से ऊँचे जाने वाले। मनुष्य योनि से जाने के चार मार्ग हैं।"

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवन्! वे चार मार्ग कौन कौन से हैं ?"

परमहंस मुनि बोले—"मनुष्य योनि में यदि पुण्य करोगे तो स्वर्गादि लोकों में जाओगे। पाप करोगे तो नरकों में जाओगे नरकों से निकलकर सर्प कीट पतंग आदि होंगे। पाप पुण्य दोनों समान प्रायः होंगे तो फिर मनुष्य होंगे। यदि ज्ञान हो गया तो जन्ममरण के चक्कर से सदा के लिये छूट जाओगे विमुक्त बन जाओगे। मुक्ति का साधनभूत यही शरीर है।"

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवन् चौरासी लाख योनियों मे श्रेष्ठ इस नर शरीर को भी पाकर लोग मोक्ष के लिये प्रयत्न क्यों नहीं करते ?"

परमहंस मुनि बोले—"राजन्! करें कैसे! मनुष्य तो विकर्मों में निरत है। सुख तो चाहते हैं, किन्तु कार्य उलटा करते हैं। शाश्वत सुख तो नित्य मे है। संसारी लोग अनित्य में सुख खोजते हैं। पुरुष स्त्री के शरीर मे सुख का अनुभव करता है स्त्री पुरुष के शरीर मे। वास्तव में शरीर तो हाड, मांस, रक्त, शुक्र, रज, वात, पित्त, कफ तथा नाना मलों का स्थान है इसमे सुख कहाँ! ज्यों ज्यों स्त्री पुरुष शरीरों में आसक्त होते हैं, त्यों त्यों वे सुखी होने की अपेक्षा अधिकाधिक दुखी ही होते जाते हैं। मनुष्य शरीर पाकर जब मैंने देखा कि स्त्री पुरुष के सयोग में सुख नहीं, कर्म तो बन्धन का कारण है तो मैं कर्मों से उपरत हो गया। निष्क्रिय बन गया।'

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवन्! नित्य सुख कैसे प्राप्त हो ?"

हँसते हुए अवधूत मुनि बोले—"सुख कहीं बाहर से लाना थोड़े ही है। आत्मा का अनुभव होने से सुख तो आप से आप प्राप्त हो जाता है, क्योंकि आत्मा तो सुख स्वरूप ही है। परन्तु वह

सुख कब मिलेगा जब इन्द्रियों को विषयों से हटा लोगे। इन्द्रियो के गोलकों का मुख बाहर की ही ओर है अतः ये बाह्यवस्तुओं को ही देखती हैं, सब प्रकार की चेष्टाओं से निवृत्त होकर भीतर की ओर देखने लगोगे, तो यह सुख स्वरूप आत्मा स्वय ही प्रकाशित हो जाता है। जब तक कर्म करते रहोगे, तब तक फल भोगते रहोगे। ये जितने ससारो भोग हैं य केवल मनोरथ मात्र हैं, कल्पित हैं। इसलिये मैं कर्मों से निवृत्त होकर केवल प्रारब्ध के आधीन होकर निर्द्वंद पड़ा रहता हूँ। जब तक शरीर का प्रारब्ध है बना रहेगा। जब प्रारब्ध समाप्त हो जायगा, छूट जायगा। अब मैं न स्वर्ग की इच्छा करता हूँ न नरक की। न जीवन ही चाहता हूँ न मृत्यु ही। सबसे उदासीन होकर आत्मा पर लक्ष्य रखता हूँ।"

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवन्! जब आत्मा सर्वगत है, व्यापक है सबके अन्त. करण में स्थित है, तो सब को उसका अनुभव क्यो नहीं होता ?"

परमहंस मुनि बोले—"राजन्! देखो, कोई सरोवर है। उसमें बहुत सी शैवाल घास उत्पन्न हो गयी है, उसने सब जल को ढँक लिया है। ऊपर से घास ही घास दिखायी देती है। कोई प्यासा आदमी आता है उस सरोवर के किनारे बैठ जाता है, यद्यपि वह जल के निकट ही बैठा है, किन्तु शैवाल से ढँके रहने के कारण उसे जल दीखता नहीं। दूर से चमकती हुई बालू मे उसे जल का भ्रम होता है। उस मृग तृष्णा को जल समझकर वह समीप के जल को छोड कर उसे पाने को दौडता है। ज्यो ज्यो वह आगे बढता है त्यो त्यों उसे वह मिथ्या जल भी आगे दिखायी देने लगता है। वह कितना भी दौडे मृग तृष्णा से उसकी प्यास कभी भी न बुझ सकेगी। यदि कोई सत

कृपा कर दें और उसे बतादें कि अरे, तू दूर क्यों ..
है जल तो तेरे समीप ही है। जल से ही उत्पन्न इस शैवाल
हटा दे तुझे सुन्दर शीतल सलिल समीप ही मिल जायगा।
वह ऐसा करता है तो उसे अगाध जल मिल जाता है, जिसे
वह तृप्त हो जाता है स्नान करके शान्ति लाभ करता है।
प्रकार जो आत्मा से अन्यत्र इन संसारी पदार्थों की प्राप्ति मे
पुरुषार्थ मानता है। वह आत्मानुसन्धान से विमुख होकर
की ओर दौड़ता है और क्लेश उठाता है। उसकी सभी की
चेष्टायें विपरीत फल देने वाला होती हैं उसे कभी शाश्वतीय शान्ति
नहीं मिलती। यदि कभी कुछ थोड़ा बहुत सुख मिल भी जाता
है, तो उसका भी परिणाम दुःख ही होता है. जिस धन को सुख
की इच्छा से एकत्रित करता है, उसी के पीछे कभी प्राण गँवाने
पड़ते हैं, कोई ले जाता है तो आन्तरिक पीड़ा होती है। जिस
स्त्री को सुख का भंडार समझता है उसी के द्वारा नाना क्लेश
मिलते हैं। जिस शरीर से सुख का अनुभव करना चाहता है
यह स्वयं रोगों का घर है मरणशील और नाशवान् है। नाशवान्
शरीर से नाशवान् भोगों द्वारा अविनाशी सुख मिल ही कैसे
सकता है!"

प्रह्लादजी! संसार में सब लोग धन के लिये प्रयत्न करते हैं।
कहावत भी है, "सबसे बड़ो रुपैया। नहीं बाप न नहिं भैया।"
'धन से ही सब सुख मिल सकते हैं। राजन्! यह भ्रम उन्हीं को
होता है जो धनी नहीं हुए हैं या धनिकों के समीप नहीं बैठे हैं।
धनिकों से जाकर पूछिये उन्हें कितना क्लेश होता है। मैं धनिकों
के पास बहुत जाता हूँ। जाता क्या हूँ धनिक मुझे लिवा ले जाते
हैं। वे सोचते हैं—"इनके ले जाने से हमें लाभ होगा।" वे मुझ से
आग्रह करते हैं तो मैं चला जाता हूँ। मेरे मन में तो कोई भेद

व है ही नहीं। मेरे लिये तो जैसे ही धनी वैसे ही निर्धनी। निकों के यहाँ जाकर मैंने देखा है वे लोग बड़े दुखी रहते हैं।

पहिला क्लेश तो उन्हें यही होता है कि जितना वे चाहते हैं तना उन्हें धन मिलता नहीं। अतः सदा धन के लिये लोलुप बने हते हैं रात्रि दिन इसी चिन्ता में रहते हैं कि धन कैसे बढ़े कैसे धिक से अधिक एकत्रित हो।

दूसरा क्लेश उन्हें यह होता है कि उनकी इन्द्रियाँ जितना गेग चाहती हैं उतना उन्हें मिलता नहीं। वे स्वादिष्ट से स्वादिष्ट अधिक मात्रा में भोजन करना चाहते हैं, किन्तु पाचनशक्ति काम नहीं देती। इसी प्रकार अन्य भोगों को भी भोगना चाहते हैं, किन्तु मनमाने भोग भोग नहीं सकते।

तीसरा क्लेश यह है कि उन्हें सब पर सदा सन्देह बना रहता है। कोई साधु भिक्षुक आ गया तो वे डर जायँगे, कि कहीं यह कुछ माँग न बैठे। सबसे शंकित बने रहेंगे। अपने पुत्र पर भी विश्वास न करेंगे। राजा से, चोर से, शत्रु से, मित्र से, स्वजन से, पशु पक्षी से, याचक से काल से कहाँ तक कहें धनवानों को अपने आप से भी भय बना रहता है, कहीं मैं रखकर भूल न जाऊँ। आवेश में आकर किसी को दे न डालूँ। चिन्ता और भय के कारण रात्रि में नींद तक नहीं आती। धन के ही समान प्राणों का भी भय बना रहता है। जितने भी शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, कायरता तथा श्रम आदि होते हैं सब धन और प्राणों के लोभ से ही होते हैं। इनकी आसक्ति के ही कारण ये सब उपद्रव होते हैं। अतः जो सच्चे सुख का इच्छुक है उस बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि इनमें से आसक्ति को निकाल दे। सब कुछ प्रारब्ध के ऊपर छोड़दे।

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवन्! यह तो आपने बड़ा ही गूढ़ ज्ञान बताया। मैं जानना चाहता हूँ आपने यह विरक्ति और निश्चेष्टता की शिक्षा किस गुरु से प्राप्त की है!"।

यह सुनकर परमहंस मुनि हँस पड़े और बोले—"राजन्! मेरे गुरु तो बहुत हैं, किन्तु विरक्ति की शिक्षा तो मैंने मधु मक्खि से ली है और निश्चेष्टता की शिक्षा ली है अजगर से। जैसे मधु मक्खियें कितनी कठिनता से मधु को एकत्रित करती हैं, किन्तु उनके सम्मुख ही मधुप आता है और उन्हें मार कर भगा कर मधु लेकर चला जाता है। ऐसे ही धनिक कितने कष्ट से रात्रि-रात्रि भर जाग कर धन को बटोर-बटोर कर रखते हैं। किसी दिन चोर आता है, मार कर सब माल लेकर चला जाता है। राजा कर लगा कर सब निकलवा लेता है। न देने पर कारावास में भेज देता है, अतः धन से विरक्त रहना चाहिये। यह शिक्षा मधु मक्खिका से लेकर मैं कभी धन संग्रह नहीं करता।

अजगर जैसे बिना कुछ किये निश्चेष्ट पड़ा रहता है। प्रारब्ध वश जो आ जाता है उसी से सन्तुष्ट रहता है, ऐसे हो मैं भाग्य के सहारे पड़ा रहता हूँ। कभी थोड़ा मिल गया थोड़ा खा लिया। किसी दिन पेट भर कर मिल गया पेट भर कर खा लिया। अजगर की भाँति पड़ा रहने से सब मुझे आजगर मुनि कहते हैं।"

प्रह्लादजी ने पूछा"तो भगवन्! आप एक ही स्थान पर पड़े रहते हैं, कहीं जाते आते नहीं।"

आजगर मुनि बोले—"राजन्! मैंने कह तो दिया, मेरा कोई नियम थोड़े ही है। स्वेच्छा से मैं कुछ काम नहीं करता। सब काम मैंने प्रारब्ध के ऊपर छोड़ दिया है। मेरे सब काम परेच्छा पर निर्भर हैं। कभी जंगल में पड़ा हूँ तो कई दिनों तक पड़ा ही रह गया। कुछ भी नहीं खाया। कोई लकड़हारा किसान

आय दो रोटी दे गया उन्हीं को खाकर पानी पी लिया। किसी ने मट्ठा दे दिया मट्ठा ही पी गये किसी ने गुड़ की राब दे दी उसी को चाट गये। कोई धनिक आया और बोला—"बाबाजी! मेरे यहाँ चलो।" तो उसी के साथ चल दिये। उसने ५६ प्रकार के व्यंजन बना कर सुवर्ण के थाल मे परोस कर सम्मान पूर्वक भोजन कराया तो उन सबको भी डटकर खा लिया। कोई दरिद्र ले गया, उसने बासी रूखी रोटियाँ रख दी तो उन्हें भी खा गये। किसी ने अपमान पूर्वक दे दिया तो उसे भी संतोष के साथ ले लिया। कभी दिन मे एक बार ही खाया। कभी कोई भक्त पीछे पड गया और उसने चार बार खाने का आग्रह किया तो चार बार भी खा लिया। मेरा नियम नहीं।

किसी ने लाकर दुशाला उढा दिया उसे ही ओढ़े रहे। जब चले और शरीर से उतर गया, तो फिर उसे उठाकर पहिना नहीं। किसी ने सूती उढ़ा दिया सूती ओढ़ लिया। किसी ने वल्कल पहिना दिया वल्कल पहिन लिया। किसी ने मृग चर्म उढ़ा दिया उसे ही ओढ़ लिया। शरीर से उतर गये तो नंगे ही लेट लगाते रहते हैं। मैं समझ लेता हूँ जो मेरे प्रारब्ध का होता है आ जाता है, जब प्रारब्ध समाप्त होता है, अपने आप शरीर से पृथक् हो जाता है।

सोने का भी मेरा नियम नहीं। अभी देखो पृथ्वीपर पडा हूँ ऐसे ही पडा रहूँगा। कोई पत्थर की चट्टान मिल जायगी उसी पर लेट लगाता रहूँगा, किसी ने आसन चटाई या पत्ते बिछा दिये उन्हीं पर सो जाऊँगा। कहीं स्मशान मे मृतको की भस्म पर ही सो जाऊँगा। कोई राजा मिल गया उसने कहा—"महाराज! मेरे साथ मेरी राजधानी मे चलो।" तो मैं उसके साथ भी रथ में

बैठकर चल देता हूँ। वह वहाँ जाकर अपने सेवकों से मुझे मल-मलकर स्नान कराताहै,उवटन लगवाता है,तैल फुलैल लगवाता है, अच्छे अच्छे सुन्दर रेशमी वस्त्र पहिना देता है। सुन्दर स्वादिष्ट भोजन कराता है। सुन्दर गुदगुदे मृदुल गद्दों वाली शय्या पर सुलाता है तो वहीं सो जाता हूँ, वह रथ में बैठाकर या हाथी पर चढ़ाकर नगर भ्रमण कराने या वायु सेवन कराने ले जाता है, तो वहाँ भी चला जाता हूँ। अवसर देखता हूँ तो वहाँ से भाग निकलता हूँ। फिर नंग धड़ंग होकर सम्पूर्ण शरीर में मिट्टी राख लपेट कर भूत-प्रेत पिशाचों की भाँति चक्कर लगाता रहता हूँ। कोई चन्दन लगाकर माला पहिना देता है उससे हर्षित नहीं होता। कोई फटे पुराने जूतों की माला पहिना देता है तो उसे ही पहिने घूमता रहता हूँ, उस पर क्रोधित भी नहीं होता।

मैं समझता हूँ, सभी अपने अपने स्वभाव से विवश हैं। सभी के स्वभाव एक से नहीं हैं। मुंडे मुंडे मति भिन्ना होती है यही समझ कर जो मुझे गाली देते हैं उनसे क्रुद्ध नहीं होता, जो मेरी स्तुति करते हैं उनसे प्रसन्न नहीं होता। स्वयं भी मैं न किसी की निन्दा करता हूँ न स्तुति। समझ लेता हूँ, सब अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य कर रहे हैं। इनकी क्या स्तुति करें क्या निन्दा करें। मैं सबकी मंगल कामना रखता हूँ, सब सुखी हों, सब मुक्त हों सबको भगवान् की प्राप्ति हो, सबका संसार बन्धन छूटे यही मैं भावना रखता हूँ। सबको स्वाहा करके लय योग के द्वारा आत्म स्वरूप में स्थित हो जाय।

प्रह्लादजी ने पूछा—"भगवान्! सबको स्वाहा कैसे करें?"

आजगर मुनि बोले-"ये जो संकल्प विकल्प करनेवाली चित्त की वृत्ति है इसमें द्रव्य जाति तथा विकल्प को लीन करदे। चित्त की वृत्तियों को मन में विलीन करदे। मनको सात्विक अहंकार

में लीन करे। अंकार क महत्व मे। महत्व को प्रकृति में और प्रकृति या माया को आत्मानुभव में लीन करदे बस, फिर आत्मानुभव से आत्मनिष्ठ होकर निर्द्वंद्व हो जाय सब कर्मों से उपरत होकर जीवन्मुक्ति के सुख का आस्वादन करे। मेरा यह वृत्तान्त लोक शास्त्र से विरुद्ध सा है, मैं किसी को बताता नहीं हूँ, किन्तु तुम से मैंने ये सब बातें बतादी, तुम भगवद्भक्त हो। ज्ञानी हो और विचारवानों में शिरोमणि हो।"

प्रह्लादजी ने कहा—"भगवन्! आपने बड़ी कृपा की जो इस दीन हीन अकिंचन को ऐसा दिव्य उपदेश दिया। आपके उपदेश मे मैं कृतार्थ हो गया। आज्ञा हो तो मैं आपका पूजन कर लूँ।"
हँसकर आजगर मुनि बोले—"जैसी आपकी इच्छा हो। मेरे लिये तो पूजन कोशन मन बराबर है। आपको जो उचित प्रतीत हो वह कर लें।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! प्रह्लादजी ने उन मुनिका विधिवत् पूजन् किया फिर उनके चरणों में प्रणाम करके वे चले गये। आजगर मुनि भी इच्छानुसार विचरण करने लगे। मुनियो! यह तो ज्ञाननिष्ठ मुनि की चर्या है, जो वर्णाश्रमादि चिन्हों से रहित अनपेक्षक भगवद्भक्त है उसकी भी ऐसी ही चर्या होती है भक्ति के द्वारा सब कुछ प्राप्त हो सकता है। भगवद् भक्त भी जब भक्ति का साधन करते करते सिद्ध भक्ति को प्राप्त कर लेता है, तो वह लोक बाह्य हो जाता है।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भक्ति की बड़ी महिमा गायी है। इस वर्णाश्रम धर्म में भी सवत्र भक्ति की ही प्रधानता बताई है। कृपा करके हमें भक्ति के सम्बन्ध में अब सुनावें।"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज ! इसके अनन्तर उद्धवजी ने भी भगवान् से भक्ति के ही सम्बन्ध का प्रश्न किया था। भगवान् के कहे हुए भक्ति के साधनों को ही अब मैं आपको सुनाऊँगा। आप सब सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

शौच आचमन नियम करें नहिँ विधिमहँ बँधिकें।
केवल लीला समुझि करें सब नियमनि तजिकें॥
ज्ञानी कूँ संसार स्वप्नवत् असत् लखावै।
होहि प्रतीति कबहुँ समुझि मिथ्या हँसि जावै।
जब तक तनु तब तक कबहुँ, यदि भासै जग नहिं हिलै।
होहि पतन जब देह को, होहि एक मो में मिलै।

—o—

ज्ञान भक्ति सम्बन्धी प्रश्न

(१२८६)

ज्ञान विशुद्ध विमल यथैतद्,
वैराग्यविज्ञानयुत पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते,
त्वद्भक्तियोग च महद्विमृग्यम् ॥*
(श्री भा० ११ स्क० १९ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

ज्ञानी तो सर्वस्व एक माई कूँ माने।
मो प्रभुतें अतिरिक्त स्वर्ग अपवर्ग न जाने॥
ज्ञानी अति प्रिय मोइ निरन्तर मोकूँ ध्यावे।
तत्व ज्ञान बिनु सिद्धि कबहुँ साधक नहिँ पावे॥
बोले उद्धव—"जगत्पति ! हो ! ज्ञान कैसे विमल।
भक्तियोग वरनन करै, सुनिवेकी इच्छा प्रबल॥

जो ज्ञान समस्त अनेकताओं को मेटकर एकत्व का साक्षात्कार कराता है, जो जडता की ओर से हटाकर चैतन्य की

---

*उद्धवजी भगवान् से प्रश्न करते हुए कहते हैं—"हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते आपने मुझे विशुद्ध वैराग्य विज्ञान युक्त सनातन ज्ञान बताया अब जिस प्रकार यह ज्ञान सुदृढ हो जाय उस उपाय को मुझे बताइये तथा महत्पुरुष भी जिसकी निरन्तर खोज करते रहते हैं, उस भक्तियोग का भी वर्णन मुझसे कीजिये।"

ओर ले जाता है । जो असत् पथ से फेर कर सत्पथ की ओर चलाता है उस ज्ञान की प्रशंसा कोई करे भी तो कैसे करें। संसार की ओर अधिकाधिक बढ़ना अज्ञान है आत्मा का साक्षात्कार करना ज्ञान है। ज्ञान होने पर जो आत्मा से प्यार करता है भजन करता है वही भक्त है। भक्ति रसायन है जो सर्वत्र सरसता का संचार करती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! पारमहंस्य धर्मों का वर्णन करते करते भगवान् अपने आप ही उद्धवजी से कहने लगे—"उद्धव ! जो विद्या और शास्त्रीय ज्ञान से सम्पन्न है, जो श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ है वही आत्मदर्शी तथा आत्मज्ञानी है, जो केवल शब्दज्ञानी है, जिसे अपरोक्षानुभव नहीं हुआ है, केवल अनुमान से ही उसने कुछ का कुछ समझ लिया है, उसे ज्ञानी नहीं कह सकते आत्मज्ञानी तत्वदर्शी तो द्वैत प्रपञ्च को तथा इसकी निवृत्ति के साधन रूप वृत्ति ज्ञान को माया मात्र मानकर मुझमें लीन कर देता है। संसार और उसकी निवृत्ति के साधन रूप वृत्ति ज्ञान मुझ परमात्मा में ही अध्यस्त हैं। तत्वज्ञानी मेरे अतिरिक्त किसी को सत् नहीं मानता। उसका अभीष्ट पदार्थ मैं हूँ, उसका सर्व श्रेष्ठ स्वार्थ मैं हूँ, उसके समस्त साधन मेरी ही प्राप्ति के लिये हैं। उसका स्वर्ग तथा अपवर्ग मैं ही हूँ, अधिक क्या कहूँ उसका सर्वस्व मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त उसे अन्य कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! संसारी लोगों को तो ये विषय ही अत्यन्त प्रिय हैं। जब आत्म स्वरूप आपही सब से अधिक प्रिय हैं, तो आपकी प्रियता का अनुभव इन संसारी लोगों को क्यों नहीं होता ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! जिसे मिश्री का ज्ञान ही नहीं जिसने मिश्री का स्वाद चखा ही नहीं उसे मिश्री प्रिय कैसे लगेगी। वह तो गुड के मैल सीरा को ही मीठा समझता है। सीरा में जो मीठापन है वह ईख के रस के ससर्ग से है, किन्तु वह मैल है, जब रस का सम्पूर्ण मैल पृथक् करके उसकी मिश्री बन जाय वह शुद्ध वस्तु होगी। जिसे उसका ज्ञान हो जाय, जो उसका रस चख ले वह फिर सीरा की ओर दृष्टि उठाकर भी न देखेगा। उसे चखना तो पृथक् रहा। अज्ञानी पुरुष मेरे स्वरूप को नहीं जानते हैं। इसीलिये वे असत् नाशवान और परिणाम में दुःख देने वाले विषयों मे सुखानुभूति करते हैं। ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण सिद्ध पुरुष मेरे परम श्रेष्ठ पद को पहचानते हैं, इसीलिये मुझे सब से अधिक प्यार करते हैं और वे भी मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। ज्ञानी तो अपने अन्तःकरण मे मेरी निरन्तर अनुभूति करता है, मुझे वह हृदय मे धारण किये रहता है। उद्धव! तपस्या करना, तीर्थों मे भ्रमण करना, पुण्य-तीर्थों में निवास करना, इष्ट मन्त्र का जप करना, विविध प्रकार के दान देना, कुआँ खुदवाना, तालाब बनवाना, बाग बगीचा लगवाना तथा और भी शुभ कर्म करना ये सब मिल कर भी ज्ञान की एक अंशमात्र सिद्धि की बराबरी नहीं कर सकते। इसीलिये ज्ञान की इतनी महिमा गायी है। अतः तुमको चाहिये कि तुम ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होकर भक्ति पूर्वक एक मात्र मेरा ही भजन करो। जो आत्म स्वरूप को जान लेता है वही मेरी भक्ति कर सकता है। ज्ञान विज्ञान यह एक प्रकार का सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। जितने भी बड़े बड़े ज्ञानी विज्ञानी ऋषि महर्षि हुये हैं, उन सबने अन्तःकरण रूप यज्ञ पात्र में आत्म रूप से मेरा भजन

करके परम सिद्धि प्राप्त की है। सिद्धि में उन्हें समस्त यज्ञों का पति मैं ही उन्हें प्राप्त हुआ हूँ।"

उद्धवजी ने कहा—"तब भगवन्! मुझे क्या करना चाहिये!"

भगवान् ने कहा—"मुझे कहने से तुम्हारा क्या अभिप्राय? यदि तुम देह को मैं कहते हो, तो तुम शरीर तो नहीं हो। यह शरीर तो त्रिविध विकारों का समष्टि रूप है तुम शरीर नहीं हो शरीर तो तुम मे आश्रित है। यह शरीर उत्पन्न होने से पहिले नहीं था अन्त होने पर भी न रहेगा। इसलिये यह शरीर तो माया के अन्तर्गत ही है। शरीर जन्मता है, मरता है तुम्हारा इससे क्या सम्बन्ध? जिसका आदि असत् है, अन्त असत् है, वह मध्य में सत् कैसे हो सकता है। घड़ा बनने के पूर्व भी मिट्टी थी घडा फूट गया तो भी मिट्टी ही हो गई तो मध्य में जब उसकी घड़ा संज्ञा थी तब वह मिट्टी के अतिरिक्त अन्य कैसे हो सकता है। जब सब उसे घड़ा घड़ा कहते हैं तब भी वह मिट्टी के अतिरिक्त कुछ नहीं। अतः तुम नाशवान् देह नहीं हो। अविनाशी आत्मा हो। इसे तुम निश्चय कर लो। अपनी धारणा को सुदृढ़ बनालो कि मैं आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ।"

यह सुनकर उद्धवजी ने बड़ी ही दीनता के साथ कहा—"भगवन्! मैं अज्ञ हूँ। मेरी बुद्धि बड़ी स्थूल है और यह ज्ञान विज्ञान का विषय बड़ा गूढ़ है। अतः आप कृपा करके इस वैराग्य और विज्ञान से युक्त सनातन विशुद्ध ज्ञान को ऐसी सरलता के साथ समझाइये जो मेरी बुद्धिमे बैठ जाय और मुझे निश्चय हो जाय कि यथार्थ ज्ञान यही है। ज्ञान के साथ ही साथ उस भक्ति को भी मुझे समझाइये जिसकी प्रशंसा करते करते आप अघाते नहीं हैं। जिस भक्ति की खोज में ब्रह्मादिक देवता गण निरन्तर लगे रहते हैं।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! यह विषय बहुत बकने बकाने का नहीं है। समस्त पारमार्थिक साधन श्रद्धा पर ही अवलम्बित हैं। अतः तुम किसी सद्गुरु का आश्रय ग्रहण कर लो। जब मनुष्य अपना सब कुछ सद्गुरु को सौंप देता है तो उसके उत्थान पतन का समस्त उत्तरदायित्व सद्गुरु के ऊपर आ जाता है। जैसे बिल्ली का बच्चा अपना कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करता सर्वात्म-भाव से वह अपनी माता के ऊपर ही निर्भर रहता है। उसकी माँ उसे जहाँ भी चाहती उठाकर रखती है, जो चाहती है खिलाती पिलाती है, वह अपनी ओर से कुछ भी आपत्ति नहीं करता। जो सद्गुरु रूपी,माता के लिये अपने आपको सौंप देता है फिर उसका हित स्वयं सद्गुरु ही करते हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"प्रभो ! यह संसार पथ बड़ा ही विकट है, अत्यन्त ही दुरूह है, कटकाकीर्ण और तप्त बालुका मय है। इसमें जो पथिक चलते हैं उन्हें निरन्तर तीनों ताप तापित करते रहते हैं। इन तापों से सतप्त पथिक निरन्तर पीडित बना रहता है ! उनको यदि कोई सुन्दर छाता मिल जाय, तो उनके समस्त संताप दूर हो जायँ। छाता भी ऐसा हो जिसमें से निर-न्तर अमृत की वर्षा होती रहती हो। मैं देखता हूँ, ऐसे अमृत वर्षी छाते तो आपके युगल चरणारविन्द ही है। जिसने इन सुखद, मृदुल, संताप हारा, परम शीतल अरुण पादारविन्दो का आश्रय ग्रहण कर लिया उसके लिये फिर संसार पथ मे किसी प्रकार का आयास प्रयास या त्रास नहीं होता। मेरे लिये तो ये चरण ही परमाश्रय है, इनके अतिरिक्त मुझे और कोई आश्रय दृष्टि-गोचर नहीं होता। प्रभो ! मैं भाग्य वश बिना जल वाले इस ससार रूप अन्ध कूप मे गिर गया हूँ। यहाँ न प्रकाश है और न जीवनोपयोगी कोई साधन ही। साथही कालरूप भयकर विषधर भुजंग द्वारा डसा गया हूँ। विषय सुख की जो तीव्र

तृष्णा है वही भयंकर वेदना है उस वेदना से मैं तड़प रहा हूँ, अत्यंत व्याकुल हो रहा हूँ ऐसी स्थिति में आपके अतिरिक्त मेरा उद्धार करने वाला कोई अन्य दृष्टि-गोचर नहीं होता। नाथ! मैं आप की शरण हूँ। मैं आपका अकिंचन भक्त, दास तथा सेवक हूँ। हे अशरण शरण! मुझे अपने चरणों की शरण प्रदान कीजिये। काल व्याल के विष से मेरा सम्पूर्ण शरीर जल रहा है अपने वचन रूपी अमृत को छिड़क कर शान्ति प्रदान कीजिये। जिज्ञासु होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ मुझे ज्ञान और भक्ति का रहस्य समझाइये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब परम भागवत, भक्त शिरोमणि उद्धवजी ने अत्यंत दीनता से ज्ञान तथा भक्ति के सम्बन्ध मे प्रश्न किया तब भगवान् प्रसन्नता प्रकट करते हुये अत्यन्त प्यार के साथ कहने लगे—"उद्धव! जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, वही प्रश्न धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने पितामह देवव्रत भीष्म जी से किया था।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो! धर्मराज ने भीष्म पितामह से कब प्रश्न किया और क्यों किया ?"

भगवान् ने कहा—"जब कौरव पांडवों का युद्ध समाप्त हो गया, दोनों ओर की सेनायें मर गयीं। दुर्योधन अपने भाई बन्धु तथा सगे सम्बन्धियों सहित मर गया, पांडवों की विजय हो गयी, तब सब ने मिलकर धर्मराज से राज सिंहासन पर बैठने को कहा। उस समय धर्मराज बन्धुओं के वध से व्याकुल हो रहे थे। मेरे बहुत समझाने पर भी वे राजा बनने को उद्यत न हुए, तब मैं ही उन्हें शर शय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह के समीप ले गया। वहाँ जाकर धर्मराज ने उनसे राजधर्म, वर्णाश्रम धर्म, स्त्रीधर्म तथा अन्यान्य विविध प्रकार के धर्मों को पूछा। बहुत से

धर्मों को सुनने के पश्चात् तब उन्होंने मोक्ष धर्म के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। उनके प्रश्नों के पितामह ने जो उत्तर दिये वे अत्यत ही उपादेय तथा अलौकिक थे। वे ज्ञान-विज्ञान वैराग्य, श्रद्धा तथा भक्ति से परिपूर्ण थे। उन मोक्ष धर्मों को सुनकर धर्मराज के सब संशय दूर हो गये। उन्हीं मोक्ष धर्मों को मैं तुम्हे सुनाऊँगा।"

यह सुनकर उद्धवजी आश्चर्य चकित होकर बोले—"भगवन्! छोटे लोग बडों के वचनों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया करते हैं। ऐसे ही मनुष्यों के वचनों को प्रमाण दिया जाता है जो अपने से श्रेष्ठ हों निभ्रान्त हों। यह सत्य है कि भीष्म पितामह बडे सदाचारी ज्ञानी थे, किन्तु आपके सम्मुख उनका ज्ञान-विज्ञान नहीं के ही बराबर है। वे आपके वचनों का उद्धरण देते यह तो उचित ही था, किन्तु आप कह रहे हैं कि जो ज्ञान मैंने भीष्म के मुख से सुना है उसे ही तुम्हें सुनाता हूँ।' इसे सुन कर मेरी बुद्धि भ्रम में पड गयी है। भीष्म पितामह तो सदा आपसे उपदेश लेने के लिये इच्छुक बने रहते थे। वे आपको क्या सुनावेगे! फिर आप उनको इतना गौरव क्यों दे रहे हैं?"

यह सुनकर भगवान् हँस पडे और बोले—"उद्धव! भीष्म भगवान ने भी मुझ से यही बात कही थी। जब मैंने उनसे धर्मराज को उपदेश देने को कहा, तब वे बोले—"केशव! आप ही धर्मराज को उपदेश क्यो नहीं देते! आपके सम्मुख मैं इन्हें क्या उपदेश दे सकता हूँ!" तब मैंने उनसे कहा था—'पितामह! मैं संसार में आपकी निर्मल कीर्ति फैलाना चाहता हूँ। मुझे भक्तों की कीर्ति मे बडा सुख होता है तुम्हारी वाणी पर बैठकर उपदेश तो मैं ही दूँगा, किन्तु नाम तुम्हारा होगा। मेरे भक्तों का नाम हो, सबलोग उनके यश का गान करें यही मुझे अभीष्ट' है

अर्जुन की वीरता की ख्याति से मुझे अत्यंत सुख हुआ। भीष्म के कहे हुए ज्ञान को लोग पढ़ेंगे, सुनेंगे उनका यश गान करेंगे। इससे मुझे आन्तरिक प्रसन्नता होगी। माता को इतना सुख सुन्दर स्वादिष्ट वस्तु स्वय खाकर नहीं होता जितना उसे पुत्र को खिलाकर होता है। इसी प्रकार मैं अपने यशोगान से उतना तुष्ट नहीं होता, जितना भक्तों के यशोगान को सुनकर होता हूँ।" इसलिए भीष्म पितामह द्वारा कहा हुआ ज्ञान यद्यपि मेरा ही ज्ञान है, फिर भी मुझे उसे भीष्म द्वारा कहा हुआ कहने मे सुख मिलता है। भक्त मुझे अपना इष्ट मानते हैं मैं भक्तो को अपना इष्ट मानता हूँ। वे मेरा यश गान करते हुए सुखी होते हैं, मुझे उनकी प्रसशा करने मे सुख होता है। भीष्म पितामह द्वारा कहा हुआ ज्ञान तो बहुत है मैं उसे अत्यंत संक्षेप मे तुम्हें सुनाऊगा।"

"उद्धव! मेरे ज्ञान का नाम साख्य है। सांख्य इसलिये कहते हैं कि इसमें तत्वों की संख्या की जाती है। जो इन तत्वो की संख्या जानकर इनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह मुक्त हो जाता है।"

उद्धवजी ने पूछा--"भगवन्! सब तत्व कितने हैं ?"

भगवान ने कहा—"तत्वों के सम्बन्ध मे ऋषियों मे बहुत मत भेद हैं। भिन्न भिन्न मुनियो के भिन्न भिन्न मत हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे तत्व ज्ञानी मुनियो के इतने भिन्न मत क्यो हैं ?"

भगवान् ने कहा—"इस विषय का विशद रूप से विवेचन में आगे करूँगा। वहीं पर सब ऋषियों के वचनों का समन्वय करूँगा इस समय तो तुम एक सर्व सम्मत सिद्धान्त को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करलो मुनियों ने मुख्य अट्ठाईस तत्व माने हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! वे अट्ठाईस कौन कौन से तत्व हैं?"

भगवान् ने कहा—"देखो पुरुष सहित नौ तो प्रकृति हैं।' एक मूल प्रकृति, एक महत्तत्त्व, एक अहकार और शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्श ये पाँच तन्मात्रायें इस प्रकार आठ तो ये प्रकृति हुई एक पुरुष। इस प्रकार नौ तो ये हुए। मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ। चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण और त्वक् ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। हाथ, पैर, वाणी,गुदा और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन इस प्रकारा ग्यारह ये हुई। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश पाँच भूत तथा सत्व, रज और तम ये तीन गुण। सब मिलकर कितने हुए? नौ और ग्यारह बीस हुए। पाँच भूत पच्चीस हुए, इनमें तीन गुण मिला दो सब अट्ठाईस हुए। जो इन अट्ठाईस तत्वों को भली भाँति जानता है, तथा इन सब में अधिष्ठान रूप से जो आत्म तत्व अनुगत है उसे जानता है वास्तव में वही ज्ञानी है, उसी को वे निश्चित ज्ञान है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! यह तो हुआ ज्ञान। अब विज्ञान किसे कहते हैं।"

भगवान् ने कहा—"विशेष ज्ञान का ही नाम विज्ञान है। जैसे दूर से पड़ी हुई रस्सी में हमें सर्प का भान होता है, किसी ने कहा—'यह सर्प नहीं रज्जु है।" उनके कथन से हमें ज्ञान तो हो गया कि यह रज्जु है, किन्तु उसके आकार में सर्प का दर्शन ज्ञान होने पर भी होता है। उस रस्सी को उठाकर हम ऐसे बाँध दें कि उसमें त्रिकाल में भी सर्प का भ्रम न हो। यही विज्ञान है। इसी प्रकार ज्ञान से यह तो निश्चय हो गया कि यह जगत मिथ्या है, किन्तु त्रिगुणात्मक भाव ज्ञान होने पर भी दिखायी देते हैं। जब आत्म तत्व के निरन्तर अपरोक्षानुभव के कारण कभी भी त्रिगुणात्मक भावों की उत्पत्ति, स्थिति

और लय स्वप्न मे भी दिखायी न दे। सदा सर्वदा अखंड एक रस आत्म सत्ता का ही अनुभव होता रहे यही विज्ञान है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन ! फिर सत् क्या है ?"

भगवान् ने कहा—"जैसे घड़ा सकोरा, नाद, मट्ठकी, हुंडी इन के बनने से पहिले भी जो थी, इनके बनते समय भी जो बनी रही। इन के बन'जाने पर भी जो रही आई और इनके मिट जाने पर भी जो अवशेष रही वही मिट्टी है। वही एक मृत्तिका सत्य है बीच में जो घडा सकोरा नाद आदि संज्ञाये हुई वे सब असत् हैं ज्ञानी की दृष्टि मे घडा सकोरा ये कुछ भी नहीं वह तो सब बर्तनों मे एक मिट्टी को ही देखता है। इसी प्रकार प्रकृति से जो महत्तत्व त्रिगुण अहंतत्व तथा तन्मात्रादिकों की जो उत्पत्ति हुई उत्पन्न होकर इन से बने पदार्थों की स्थिति रही और फिर ये सब अपने अपने कारणों में विलीन हो गये। इन तीनों अवस्थाओं में जो विद्यमान रहा है जो एक कार्य से दूसरे कार्य के अन्तर्गत अनुस्यूत है। जो सब के लय हो जाने भी जो अवशेष रहा जाता है। उसी का नाम सत् है। उसे ही ब्रह्म कहलो, आत्मा कहलो परमात्मा कहलो भगवान् कहलो। वही सत्य है शेष सब मिथ्या है।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! यह जगत् तो देखने में प्रत्यक्ष सत्य सा दिखायी देता है इसे मिथ्या कैसे समझें ? इससे वैराग्य कैसे हो ?"

भगवान् ने कहा—"भैया ! जो दीखे वह सत्य ही है यह तो बात नहीं। आकाश नीला नीला दीखता है क्या आकाश कोई नीला पदार्थ है। इन्द्र धनुप प्रत्यक्ष दिखायी देता है। वह कोई आकाश में रखा हुआ वास्तविक धनुप है ? मरु भूमि में चमकती हुई बालू सूर्य की किरणें पड़ने से प्रत्यक्ष समुद्र सा दिखाई देता है, क्या वह वास्तव में जल है ! जो प्रमाणों से सिद्ध हो वही वास्तविक है।"

उद्धवजी ने कहा—'भगवन्! प्रमाण कितने प्रकार के हैं और प्रमाणों से जगत् मिथ्या कैसे सिद्ध होता है?"

भगवान् ने कहा— 'मुख्य चार प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण, शब्द प्रमाण और ऐतिह्य प्रमाण।" प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो प्रत्यक्ष दीखे। जैसे वस्त्र है। अब वस्त्र मे देखते हैं क्या एक ताना है एक बाना है। ताने बाने से मिलकर वस्त्र बना है। ताने मे क्या है? सूत्र। बाने मे क्या है? सूत्र इससे सिद्ध हुआ सूत्र ही सत्य है और सब मिथ्या है। हम प्रत्यक्ष देखते हैं पट मे सूत्र के अतिरिक्त कुछ नहीं है। घट मे मृत्तिका के अतिरिक्त कुछ नही। अत. सूत्र मृत्तिका सत् है, शेष नाम रूपमिथ्या हैं। जगत् मे भी एक ब्रह्म सत्य है शेष सब मिथ्या है। अनुमान प्रमाण उसे कहते हैं जैसे कहीं धुआ देखा। उस धुआ को देखकर अनुमान लगा लिया कि वहाँ अग्नि होगी। यद्यपि अग्नि को प्रत्यक्ष नही देखा है, किन्तु पहिले जहाँ भी धुँआ देखा था वहीं अग्नि थी। इसलिये यह अनुमान लगा लिया कि जहाँ जहाँ धुआ होगा वहाँ वहाँ अग्नि होगी। सीप दूर से चाँदी की भाँति दिखाई देती है, किन्तु वहाँ चाँदी न थी न है न होगी। इसी प्रकार यह जगत् मिथ्या प्रतीत हो रहा है न पहिले था न है न होगा। शब्द प्रमाण उसे कहते हैं जो वेद मे कहा गया हो। वेद डके की चोट कह रहा है। "यह नानात्व कुछ भी नहीं है। ऐतिह्य प्रमाण उसे कहते हैं जो महाजनों द्वारा परम्परा से प्रसिद्ध हो। जितने भी महापुरुष हो गय हैं वे सब एक स्वर से कहते आये हैं। ब्रह्म ही सत्य है जगत् परिवर्तन शील है। मिथ्या है। इन चारों प्रमाणों के द्वारा जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध होता है। अतः इस जगत् से उपराम हो जाय, वैराग्य धारण करले। जगत् से उपराम हो जाना यही वैराग्य है। विज्ञानी पुरुष चारों प्रमाणों में अनावस्था होने के कारण विकल्प रूप संसार से विरक्त हो जाता है।"

उद्धवजी ने कहा —"भगवन् ! अच्छा, इस लोक की तो सब वस्तुएँ नाशवान हैं, किन्तु स्वर्गादि लोकों की वस्तुएँ तो दिव्य हैं उनसे तो वैराग्य न करे ?"

भगवान् ने कहा—"अच्छा, यह बताओ स्वर्गादि लोक कैसे प्राप्त होते हैं ?"

उद्धव जी ने कहा— 'पुण्य कर्मों से ही ये दिव्य लोक प्राप्त होते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"कर्म सब परिणामी हैं। कितना भी पुण्यकर्म हो, कभी न कभी वह भी क्षीण होगा। जब कर्म ही परिणामी है, तो उनसे प्राप्य लोक अविकारी और नित्य कैसे होंगे ? जैसे कारण होता है वैसा उसका कार्य होगा। मृत्तिका की जो भी वस्तु बनेगी वह मिट्टी ही होगी। नाशवान् अन्न से जो देह बनेगा वह भी नाशवान् ही होगा। इसलिये कर्मों के द्वारा प्राप्त ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने लोक हैं वे सब नाशवान् हैं। अतः जो विकारवान हैं वे अमङ्गल रूप हैं। इसीलिये विचारवान् व्यक्ति को चाहिये कि इस लोक के सदृश स्वर्गादि समस्त लोकों को भी विनाशी ही समझे उनकी ओर से भी विरक्त हो जाय। यह मैंने तुझे ज्ञान-विज्ञान, सत् और वैराग्य के सम्बन्ध में बताया अब तू और क्या सुनना चाहता है ?"

उद्धवजी ने कहा—'भगवन्! भक्ति के विषय मे मैं और सुनना चाहता हूँ।"

भगवान् ने हँसकर कहा—"अरे भाई, मैंने कितनी बार तो तुझे भक्ति के सम्बन्ध मे बताया है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! इस विषय मे सुनते-सुनते मेरी तृप्ति ही नहीं होती है। मेरी इच्छा होती है, कि इस विषय को मैं बार-बार सुनता रहूँ और विशेष कर आपके श्रीमुख से।' अब आप कृपा करके मुझे भक्ति के परम साधन बता दीजिये।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! भक्ति शास्त्र अगाध है। इसके भेद भी असंख्यो हैं। मैं देखता हूँ भक्ति के विषय मे श्रवण करने की तुम्हारी रुचि आरम्भ से ही है। जब कोई मनोनुकूल सुनने समझने वाला योग्य श्रोता मिल जाता है, तो वक्ता का उत्साह भी अधिक बढ जाता है। उस समय वह अपनी रहस्य से रहस्य ज्ञान को बताने के लिये उद्यत हो जाता है। तुम्हे योग्य अधिकारी समझकर अब मैं अपनी भक्ति के परम साधन तुम्हें बताता हूँ।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! मुझे स्पष्ट करके समझावें। आपकी भक्ति प्राप्त करने के मुख्य-मुख्य साधन कै हैं।"

भगवान् ने कहा—"मेरी भक्ति प्राप्त करने के मुख्यतया चौदह साधन हैं। इनमें से किसी एक को ही करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है, फिर जिनमें ये चौदह वर्तमान हैं उनके सम्बन्ध मे तो कहना ही क्या है अब मैं तुम्हें उन चौदह साधनो को ही क्रम से सुनाऊँगा। इन्हे तुम दत्त-चित्त होकर सावधानी से श्रवण करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् ने जो भक्ति प्राप्ति के चौदह साधन बताये उन्हें मैं आगे आपसे कहूँगा। आप भी इस परम पावन पुण्य प्रसंग को श्रवण करने के लिये सम्हल जायँ।"

छप्पय

हरि बोले—"जो ज्ञान भीष्म पाडवकूँ दीयो।
ताही कूँ हूँ कहूँ प्रश्न तुमने जो कीयो॥
नौ, ग्यारह अरु पाँच तीन अट्ठाइस ये सब।
कहे तत्व इन माँहि एक अनुगत हौं उद्धव॥
ज्ञान कह्यो अपरोक्ष है, दृढ़तर सो विज्ञान है।
नेति नेति तै जो बचै, वही ब्रह्म भगवान् हैं॥

—:ॐॐ:—

भक्ति योग वर्णन

(१२८७)

भक्ति योगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणायतेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १६ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

परिणामी सब कर्म लोक परलोक अशाश्वत ।
जानि असत् सब तजै जगतकूँ ज्ञानी विषवत् ॥
भक्ति योग अब कहूँ समुझिकें तुमरी रुचि अति ।
कथा सुनै अरु करै नाम कीर्तन मम नित प्रति ॥
मेरी पूजामहँ सतत, रहै भक्त सलग्न नित ।
त्यागि जगत् व्यवहार सब, समुझै सेवा माहिँ हित ।

जितने कर्मारम्भ हैं सब दोष युक्त हैं। जो भी कर्म करोगे उनका कुछ फल होगा, वह फल कभी न कभी नाश होगा। कर्मों से प्राप्त जितने लोक हैं वे सब क्षयिष्णु हैं नाशवान् हैं। कर्मों का एक ही उपयोग है अन्तःकरण की शुद्धि शुभ कर्म करते करते अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान का

---

*भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव ! मैंने भक्ति योग तो तुम से पहिले ही कहा था, किन्तु देखता हूँ तुम्हारी इस ओर अधिक प्रीति बढ़ी हुई है, अतः मैं फिर से तुम्हें अपनी भक्ति के परम साधन कहता हूँ।"

प्रकाश होगा और ज्ञान से मुक्ति होगी। ज्ञान मार्ग में कर्मों का त्याग अत्यावश्यक है।

एक दूसरा ऐसा मार्ग है, जिसमें कर्मों का त्याग नहीं किया जाता वे कर्म निष्काम भाव से प्रभु प्रीत्यर्थ किये जाते हैं। उसे चाहे निष्काम कर्म योग कह लो या भक्ति योग; कर्म करो, किन्तु सांसारिक कर्म की इच्छा से मत करो। मेरे इस कर्म से सर्वान्तर्यामी प्रभु प्रसन्न हो जायँ इसी भावना से करो। इससे दो मार्ग सिद्ध हुए एक ज्ञान मार्ग दूसरा भक्ति मार्ग केवल वैदिक। यज्ञ यागादि कर्म द्वारा की हुई भक्ति का नाम उपासना है। वेद, तन्त्र तथा पुराणादि विधि से भगवान् के पूजन का नाम भक्ति है। भक्ति और ज्ञान दोनों स्वतन्त्र मार्ग हैं। जो भक्ति को प्रधान मानते हैं, वे ज्ञान को भक्ति का साधन मानते हैं और जो ज्ञान को प्रधान मानते हैं, वे भक्ति को ज्ञान का साधन मानते हैं! किन्तु भागवत शास्त्रों में भक्ति को ही प्रधानता दी गयी है, वहाँ मुक्ति को भी तुच्छ और अग्राह्य बताया है जो ज्ञान का चरम लक्ष्य है। इस प्रकार भक्ति की महिमा अत्याधिक है। भक्ति मार्ग सरस है सरल है सुन्दर है, हृदयग्राही है, मानव रुचि के अनुकूल है और स्वाभाविक है। उस भक्ति योग के विषय में जितना भी कहा जाय उतना ही अल्प है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब उद्धवजी ने भगवान् से भक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किया, तब भगवान् भक्ति के मुख्य तथा चौदह साधनों का वर्णन करते हुए कहने लगे—"उद्धव! मेरी भक्ति प्राप्त करने के बहुत उपाय हैं, उनमें चौदह मुख्य हैं। उनमें सर्व प्रथम है मेरे सम्बन्ध की अमृतमयी कथाओं को सुनना।"

१–श्रवण श्रद्धा–"भगवान् के नाम की महिमा के सम्बन्ध में सुनना, उनके परम पावन चरित्रों को सुनना और उनके दिव्य अलौकिक गुणों को श्रवणकरना, यह भक्ति का प्रथम और मुख्य

साधन है। उद्धव ! नाम और नामी का अभिन्न सम्बन्ध होता है। जिसका नाम दूध है और जा दूध पदार्थ है वह एक ही वस्तु है। मैं और मेरा नाम दो वस्तु नहीं है। मेरे नाम की महिमा सुनना मेरी ही महिमा सुनने के समान है। संसार रूपी सर्प से डसे हुए, पुरुषों के लिये एक ही सबसे सुन्दर अमोघ अचूक औषधि है। कि वह सभी अवस्थाओं मे सर्वत्र सदा मेरे नामों का कीर्तन करे। जैसे अजामिल मेरे नाम के ही प्रभाव से तर गया, इसी प्रकार नामानुरागी भक्तों की कथा सुनना तथा जिन वचनों मे मेरे नाम की महिमा गायी गयी हो उन्हें सुनना यह तो नाम श्रवण है। अब दूसरा है चरित्र श्रवण।

मेरे जितने व्रज के गोष्ठ के निकुञ्ज के, मथुरा तथा द्वारका के चरित्र हैं उन्हें बैठकर परस्पर में प्रेम पूर्वक सुनना यह भी भक्ति बढ़ाने का सर्वोत्कृष्ट साधन है। उद्धव ! जहाँ मेरे बहुत से सहृदय भावुकभक्त बैठकर मेरे चरित्रों की चर्चा करते हैं। सभी के नेत्रों से प्रेमाश्रु बहते रहते हैं, सभी का शरीर पुलकित होता है, सभी के कंठ गद्गद् हो जाते हैं, उस समाज में तो मैं पलथी मार कर बैठ जाता हूँ। अहा ! जहाँ पर भक्त मेरे चरित्र सुनते सुनते अघाते नहीं हैं, सभी नित्य उन्हीं चरित्रों को सुनने के निमित्त व्यग्र बने रहते हैं। उनमें से कोई एक उत्कृष्ट भक्त अपनी अमृत मयी वाणी से कथामृतका प्रवाह बहाता है और उस वेगवान् प्रवाह से अनेकों धारायें फूट कर भक्तों के हृदयों को परिप्लावित करती रहती हैं, उस समाज के सुख के सम्बन्ध मे तो कहा ही क्या जा सकता है। वहाँ तो भक्ति महारानी मूर्तिमयी होकर नृत्य करने लगती है। वह स्थल परमधन्य है सब तीर्थों से भी श्रेष्ठ है जहाँ मेरे बहुत से भक्त आनंद में विभोर होकर नित्य नियम से मेरी कथा श्रवण करते हैं।

उद्धव ! जब मैंने महाराज पृथु से वर माँगने को कहा, तो

उन्होंने मुझसे यही वर माँगा कि "प्रभो! आपके चरित्र श्रवण के निमित्त मेरे दश सहस्र कान हो जायँ।" मेरे भक्त मेरे चरित्रों को सुनते सुनते सतुष्ट नहीं होते उनकी अधिकाधिक श्रवण की लालसा बनी ही रहती है। इसी प्रकार मेरे गुणों का श्रवण करे। नाम लीला गुण श्रवण से मेरी भक्ति हृदय में स्वतः प्रादुर्भूत होती है। यह तो श्रवण भक्ति हुई। दूसरा उपाय है कीर्तन।

२—नाम कीर्तन—श्रवण तो कानों का साधन है, कीर्तन वाणी का साधन है। मेरे नामों का लीला तथा गुणों का उच्च स्वर से उच्चारण करने का नाम कीर्तन है। जप में और कीर्तन में अन्तर है। मेरे प्रणत्व बीज तथा व्याहृति युक्त नमः स्वाहा स्वधान्त मंत्रों का तथा नाम मंत्रों का जप एकान्त में बैठकर होता है उसके लिये माला की सख्या की अपेक्षा रहती है, किन्तु कीर्तन के लिये इन सबकी अपेक्षा नहीं। केवल उच्च स्वर से वाणी से उच्चारण हो यही कीर्तन है। नाम सकीर्तन जैसे :—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥
रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

और भी जो मेरे नाम है उनका ताल स्वर तथा बाजेके साथ अथवा वैसे ही उच्च स्वर से उच्चारण करने का नाम कीर्तन है। इस नाम सकीर्तन में नारदजी की पूर्ण निष्ठा है वीणा बजा कर मेरे राम कृष्ण हरि इन नामों का निरन्तर कीर्तन करते रहते हैं। लीला, लीला कीर्तन तथा गुण कीर्तन व्यास, शुक तथा अन्यान्य ऋषि महर्षि करते रहते हैं। शौनकजी ने तो मेरे लीला गुणों की प्रशसा करते हुए यहाँ तक कहा है कि बुद्धिमान पुरुषों के लिये तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सत्कथन, ज्ञान और समस्त दान धर्म आदि अखिल सत्कर्मों का एक मात्र अक्षय फल यही है कि

भगवान् उत्तम श्लोक के गुणानुवाद का वर्णन कियाजाय। मेरे नाम, लीला तथा गुणों के गान से मैं विवश होकर चला आता हूँ, मेरे नामों का अविश्रान्त सतत कीर्तन करते रहना यह मेरी भक्ति प्राप्त करने का सर्वोत्कृष्ट सर्व सुगम सर्वोपयोगी सुन्दर साधन है। तीसरा साधन है मेरी पूजा में तत्परता रखना।

३-पूजा तत्परता-मेरी पूजा को बडे उत्साह के साथ करना। बिना पूजा किये भोजन आदि कुछ भी न करना। पूजा करना यह जीवन का एक प्रधान कार्य हो जाय। बिना निष्ठा के कोई भी कार्य नहीं होता। अतः दिखाने के लिये नहीं मेरी पूजा में निरन्तर परिनिष्ठा रखना। भक्त का सर्वस्व मेरी पूजा ही है। जो भक्त मेरी पूजा मे प्रमाद करता है वह वास्तविक भक्त नहीं। अतः मेरी पूजा में निष्ठावान् होना यह मेरी भक्ति की प्रमुख साधना है। चौथा साधन है स्तोत्रों द्वारा मेरी स्तुति करना।

४-स्तुति स्तवन-भगवान् के उद्देश्य से जो भी कुछ विनती की जाय, वह भगवान् के बद द्वार खोलने की कुंजी है। उन्हीं विनय वचनों को ऋषियो ने स्तोत्र या स्तवन कहा है। वह स्तुति कई प्रकार की जाती है। एक तो सप्रार्थना मयी होती है। जैसे कहते हैं—"हे प्रभो ! जैसे कामियों को मनोनुकूल कामिनी प्यारी होती है और कामिनियों को मनोनुकूल युवक प्रेमी जार प्रिय लगता है, ऐसे ही हे कान्त ! तुम मुझे कब प्यारे लगोगे। जैसे लोभी को पैसा अत्यत प्यारा लगता है ऐसे ही हे मेरे हृदय धन ! तुम मुझे प्यारे लगो।

दूसरी अत्यत दीनता पूर्वक स्तुति होती है—"जैसे—मैं पाप

रूप हूँ, पापात्मा हूँ पाप संभव हूँ। आप सभी पापों को हरने वाले हैं हे हरे! मेरी रक्षा करो रक्षा करो।' हे नाथ! हे प्रभो! मेरे समान कोई अपराधी तथा पापात्मा नहीं है, मुझे तो आप से कुछ कहने में भी बड़ी लज्जा लग रही है, अब मैं क्या कहूँ, क्या विनती करूँ।" एक लालसामयी स्तुति होती है—"जैसे मैं उस बृन्दावन मे जिसमें मेरे स्वामी हलधर सुदामादिकों के साथ गौओं के पीछे-पीछे मुरली बजाते हुए घूमते रहते हैं। उसी वन में रो-रोकर यह पुकारता हुआ कि हे नाथ! आप मुझ पर प्रसन्न हों कृपा करें ऐसा कब होऊँगा।" हे नाथ! मैं बृन्दावन में यमुना पुलिनों पर आपके नामों का कीर्तन करते हुए, नेत्रों से अश्रुबहाते हुए कब तांडव नृत्य करते करते मूर्छित होकर ब्रज रज में गिर पड़ूँगा।"

इसी प्रकार की अनेकों स्तुतियाँ, अथवा गजेन्द्र स्तुति, प्रह्लाद स्तुति, वेदस्तुति तथा अन्यान्य महा पुरुषों के बनाये हुए स्तोत्रों को मधुर वाणी से भगवान् के सम्मुख कहना उनका गान करना।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! स्तुति करने से क्या लाभ होता है?"

सूतजी बोले—"महाराज! स्तुति करने से हृदय द्रवी भूत हो जाता है। अपनी दीनता भगवान् के सम्मुख प्रकट करते हैं, उनकी भक्तवत्सलता का स्मरण करते हैं, तो हृदय में एक प्रकार की हिलोरें उठने लगती हैं। ऐसा विश्वास होने लगता है कि जब भगवान् पतित पावन हैं अधमोद्धारक हैं, तो अवश्य ही वे हमारा उद्धार करेंगे। भगवन्! यह मनुष्य बड़ा अभिमानी है, यह किसी के सम्मुख स्वेच्छा से सिर झुकाना नहीं चाहता। जहाँ इसे अपनी अल्पज्ञता का अपनी अधमता का बोध हुआ और भगवान् की

भक्त वत्सलता और महत्ता का भान हुआ तहाँ इसका समस्त अज्ञान नष्ट हो जाता है, फिर इसके उद्धार मे कोई सन्देह नहीं रह जाता। अतः प्रातः सायं पूजा के अनन्तर नित्य ही नियम से स्तुति प्रार्थना स्तोत्र पाठ करने चाहिये। ये मैंने भगवान् के कहे हुए चार उपाय बताये शेष उपायों को आगे बताऊँगा। बडी गर्मी है मुख सूखता है, तनिक गंगा जल पान करलूँ।'

छप्पय

ह्वै कें अति ई आर्त करै स्तव मेरो सादर।
परम दीनता प्रकट करै मेरे प्रति आदर॥
करुनामय इस्तोत्र कंठ गद् गद् ह्वै गावै।
मम मन्दिर महँ भक्ति भाव तैं गाइ सुनावै॥
मेरी सेवामहँ सदा, प्रेम रखहि सेवा करै।
मेरे सम्मुख दण्डवत्, प्रेम सहित भूपै परै॥

भक्ति के परम साधन

(१२८८)

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्त पूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १९ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

सब अङ्गनि तैं करै बन्दना मम भक्तनि की।
पूजा मोतैं अधिक करै श्रद्धातैं उनि की॥
निज पूजा कूँ निरखि होहुँ नहिँ उतनो हरषित।
जितनो पूजित भक्त निरखि होवै अंग पुलकित॥
थावर जंगम जीव सब, अचर सचर चैतन्य जड़।
निरखै मोकूँ सबनि महँ, जगमहँ सोई भक्त बड़॥

भक्ति मार्ग में सब से बड़ी दो बात है अपने को सबका सेवक समझो और जो भी कुछ करो प्रभु की पूजा समझ कर ही करो। अर्थात् तुम्हारे समस्त कर्मों का उद्देश्य यही हो कि हम अपने स्वामी की सेवा कर रहे हैं। भक्त भगवान् को अत्यंत प्रिय

---

*भगवान् श्री कृष्ण चन्द्रजी भक्ति की परम साधनों को बताते हुए कहते हैं—"उद्धव मैं भक्ति बढ़ाने के चार साधन बता चुका अब कुछ और ये हैं। जैसे मेरी परिचर्या के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना, सर्वाङ्गों से मुझे प्रणाम करना, मेरे भक्तों की मुझसे भी अधिक पूजा करना और सम्पूर्ण प्राणियों में मेरी ही बुद्धि रखना।"

हैं भगवान् भक्तोंको अपना सर्वस्व मानते हैं। इसलिये जिन्हे भगवान् को पाना हो, वे भक्तों की शरण मे जायें। जिसपर भक्त प्रसन्न हो गये उन पर भगवान् को प्रसन्न होना ही पडेगा। किन्तु जो भक्तों की उपेक्षा करके सीधा भगवान् से ही सम्बन्ध जोडना चाहता है, भक्तों को कुछ समझना ही नहीं उसे अंत मे पछताना पडता है, क्योंकि भगवान् तो भक्तो के वश में हैं जो उनके प्रेमियों का अपमान करता है उसे भगवान् कैसे अपना सकते हैं

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भक्ति के प्रधान चौदह साधनो में से चार साधनों को बताकर अब भगवान् पॉचवा साधन बताते हुए कह रहे हैं—"उद्धव ! पंचम साधन है मेरी परिचर्या के प्रति आदर भाव।

५—परिचर्या आदर—भगवान् की पूजा जो उपकरण हैं उनके प्रति अत्यंत ही ममत्व रखना। जैसे मेरे लिये जो आसन हो वह अपनी सामर्थ्यानुसार उत्तम से उत्तम हो। पाद्य आचमनीय तथा स्नान के लिये जल हो वह उत्तम से उत्तम पात्र में मॉजकर पवित्रता के साथ लाया गया हो। मेरे पचामृत स्नान के लिये जो दुग्ध, दधि, घृत,शर्करा तथा मधु एकत्रित किया हो वह उत्तम से उत्तम हो। वस्त्र,यज्ञोपवीत सुन्दर से सुन्दर हो। पुष्प सुन्दर सुगधित और अम्लान हों, माला श्रद्धा सहित गुंथी हुई हो। साराश यह कि नैवेद्य , पत्र, पुष्प, फल या जो भी पूजा सम्बन्धी वस्तुएं हों वे सुन्दर स्वच्छ और उत्तम हों मेरे मन्दिर में लज्जा छोडकर स्वयं झाड़ू दे, स्वयं उसके पार्षदों को स्वच्छ करे और पूजा के उपकरणों को अत्यंत आदर के सहित एकत्रित करें। तब पूजा करने बैठे और प्रेम पूर्वक पूजन करे। छटा साधन है साष्टाग दंडवत्।

६—सर्वाङ्ग अभिनादन—श्रद्धास्पद के प्रति नत होकर उनके प्रति आदर भाव प्रकट करना, इसे ही प्रणाम कहते हैं। प्रणाम के बहुत भेद हैं। हाथ जोड देना, सिर झुका देना, चरण स्पर्श कर

लेना, पंचाङ्ग प्रणाम कर लेना तथा साष्टाङ्ग दंडवत् करना। इन सब में साष्टाङ्ग दंडवत् का महत्व अत्यधिक है। अपने श्रद्धास्पद को देख कर उनके सम्मुख आठों अङ्ग से दण्डे के सदृश पड़ जाने का नाम साष्टाङ्ग दण्डवत है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवान् आठ अङ्ग कौन कौन से हैं?"

भगवान्ने कहा—"दोनों पैर दोनों हाथ, हृदय सिर, मन और वाणी ये ही आठ अङ्ग हैं। दोनों हाथोंको दोनों पैरोंदोनों को लाकर भूमि मे लोट जाय,पैरों के पंजे हाथों के पंजे हृदय और सिर भूमि में लगा रहे। फैले हुए हाथों की मुकुलाकार अञ्जलि बँधी रहे मन से मेरे चरणों की चिन्ता करता रहे और वाणी से कहे "हे प्रभो! मृत्यु के भय से भयभीत हो रहा हूँ मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी शरण में हूँ।"इस प्रकार सदा मेरे मंदिरों में जाकर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम करे, तथा मेरे भक्तों के लिये तथा मेरे अभिन्न रूप के लिये भी सदा साष्टाङ्ग प्रणाम करे। अभिवा दन से दीनता तथा मृदुता आती है। सातवाँ साधन है मेरे भक्तों की पजा करना।

७—भक्त पूजा प्रेम—भगवान् कह रहे हैं—"उद्धव! संसार मे जितना मुझे भक्त प्रिय है, उतना प्रिय कोई भी नहीं है। लक्ष्मी जी मेरी अर्धाङ्गिनी हैं, किन्तु भक्तों के पीछे मैं उन्हें भी छोड़ सकता हूँ। कमलयोनि ब्रह्मा मेरे पुत्र हैं, किन्तु भक्त मुझे उन से भी अधिक प्रिय हैं, मैं तुम्हें कहाँ तक बताऊँ भक्त मेरी आत्मा हैं मेरे इष्ट हैं सर्वस्व हैं। मेरा कोई चाहे कितना भी भक्त क्यों न हो यदि वह मेरे भक्तो से द्वेष करता है, तो मैं उसका आदर नहीं करता। जो केवल मेरे ही भक्त हैं, वे वास्तव में भक्त नहीं हैं यथार्थ भक्त तो हैं जो मेरे भक्तों के भक्त हैं। मेरे भक्तों की सदा सेवा करने वाले राजर्षि अम्बरीप थे। जहाँ उन्होंने तुलसी माला धारण किये शंख चक्राङ्कित, गोपी चंदन का तिलक लगाये

वैष्णव को देखा वहीं वे उसको साष्टाङ्ग प्रणाम करते, जिसके मुख में भगवान् का नाम हो, जो भगवान् की कथा कहते हों, जो भगवान् का कीर्तन करते हों उन सब को देखकर वे प्रणाम करते और उनकी सब प्रकार की सेवा करते। दुर्वासा भी मेरे भक्त थे, किन्तु वे मेरे भक्तों को कुछ नहीं समझते थे। अपने तप के अभिमान में सदा भरे रहते थे। उनके आने पर अम्बरीप ने उनका आदर किया धर्म संकट में पडकर उन्होंने उनको भोजन कराने के पूर्व जल पान कर लिया। इसी पर वे क्रुद्ध हो गये। कृत्या उत्पन्न कर दी। अम्बरीप तो कुछ नहीं बोले किन्तु मेरे दिव्यायुध सुदर्शन चक्र से मेरे भक्त का अपमान न सहा गया। उसने दुर्वासाजी का पीछा किया, दुर्वासा जी तीनों लोकों में घूमे सब की शरण गये, किसी ने भी न शरण दी। हार कर मेरे समीप आये। मुझसे बोले—"आप मुझे शरण दीजिए।"

मैंने कहा—"मैं विवश हूँ; तुम्हें शरण नहीं दे सकता।"

वे बोले—"आप तो शरणागत वत्सल हैं। अशरण शरण हैं।"

मैंने कहा—"मैं सब कुछ हूँ, किन्तु भक्तों के अपराधियों के लिये मेरे यहाँ स्थान नहीं। मैं भी तो दूसरों के अधीन हूँ। वे आश्चर्य चकित होकर बोले—"आप किनके अधीन हैं?"

मैंने कहा—मैं भक्तों के अधीन हूँ।"

तब वे बोले—"तो मेरा कहीं भी उद्धार न होगा?"

मैंने कहा—"होगा क्यों नहीं, अवश्य होगा।"

वे बोले—"जब सब के शरण देने वाले आपने ही मना कर दिया तो और कौन स्थान रहा जहाँ मेरा उद्धार होगा।"

मैंने कहा—"भक्तों की शरण मे ही जाने से उद्धार होगा। उन्हीं राजर्षि अम्बरीप की शरण में जाओ।"

यह सुनकर वे राजा की शरण में गये, तब संकट से बचे। उद्धव ! अपने अपराधी को क्षमा करने में मुझे कुछ भी कष्ट नहीं, किन्तु भक्तों के अपराधियों को मैं क्षमा करने में असमर्थ हूँ। दुर्योधन मेरा तो मान सम्मान करता ही था। किन्तु मेरे भक्त पांडवों से वह द्वेष रखता था, इसीलिये मैंने उसके यहाँ भोजन नहीं किया।

जब मैं मिथिला में श्रुतदेव ब्राह्मण के घर बहुत से ब्राह्मणों के साथ गया, तब उसने मेरी तो बहुत पूजा की ब्राह्मणों की मेरे भक्तों की उतनी नहीं की तब मैंने उसे डाँटते हुए कहा—"तू मुझसे भी अधिक इन मेरे भक्तों की पूजा कर।"

उद्धव जी ! केवल मेरी पूजा से तो अकेली मेरी ही पूजा होती है, भक्त की पूजा करने से भक्त और मेरी दोनों की पूजा होती है। मुझे लाकर पत्र, पुष्प, फल चढा दिये तो मेरी पूजा हो गयी। उन्हीं वस्तुओं को भक्त के सम्मुख रखो तो वे बिना मुझे भोग लगाये तो कुछ खाते ही नहीं। मुझे भोग लगावेंगे प्रसाद बाँटेंगे तब पावेंगे इससे दोनों की पूजा हो गयी। अत भक्तों की पूजा मुझसे भी अधिक करनी चाहिये। मैं भक्तों की पूजा देखकर बहुत अधिक प्रसन्न होता हूँ।" आठवाँ साधन है, सब भूतों मे मेरी भावना करना।

८—सर्वात्म दर्शन—किसी भी जड चैतन्य, सजीव निर्जीव प्राणी की मेरे बिना सत्ता नहीं। चराचर विश्व में मैं ही रम रहा हूँ। मेरा भक्त सब में मेरा दर्शन करता है। जब वह सब में मुझे ही देखता है, तो किससे विरोध करेगा, किसकी निंदा करेगा। विरोध अन्य से किया जाता है, निन्दा अपने से भिन्न स्वभाव वाले की की जाती है। जिस की ऐसी मति निश्चित है, कि सब मेरे इष्ट के ही रूप हैं वे ही नाना रूपों मे क्रीडा कर रहे हैं, उसकी द्वेष बुद्धि रहेगी ही कैसे ? वह शोक मोह से सदा दूर ही

रहेगा। नवमॉं साधन है—

९—मेरे ही निमित्त सम्पूर्ण अंगो की चेष्टा करना।

१०—समस्त चेष्टायें प्रभु निमित्त—सम्पूर्ण अङ्गों की जो चेष्टायें हों वे मेरे ही निमित्त हों, किसी अन्य के निमित्त न हों। जैसे पतिव्रता अपना सर्वस्व पति को ही अर्पित कर देती है। उस की जितनी भी चेष्टायें होंगी, पति के ही निमित्त होंगी। वह शरीर पर उबटन लगावेंगी, उसे वस्त्राभूषणों से सजावेगी, शृंगार करेगी, वह सब पति की ही प्रसन्नता के लिये करेगी। कर्म न कोई बुरे हैं न अच्छे। भावना के ही अनुसार वे अच्छे बुरे हो जाते हैं। एक ही कर्म दो करते हैं एक के कर्म की सब प्रशसा करते हैं, दूसरे के उसी कर्म की निन्दा होती है। जिस प्रकार पतिव्रता शृंगार करती है, उसी प्रकार वेश्या भी शृंगार करती है, किन्तु वेश्या का शृंगार प्रदर्शन के लिये है, वह एक के लिये नहीं है। इसलिये उसकी निन्दा होती है, पतिव्रता अपने अपने पति को छोड़कर दूसरे की ओर ऑख उठाकर भी नहीं देखती, इसलिये उसका वही कार्य वन्दनीय और श्लाघनीय समझा जाता है। संसारी लोग भी तो दिन भर देह के ही पीछे चिन्तित होते रहते हैं। आज यह नहीं पचा अमुक चिकित्सक को बुलाओ अमुक वस्तु खाओ। अमुक वस्तु अमुक स्थान से मॅगाओ। उसका इस प्रकार उपभोग करो। इन्हीं बातों मे वे लगे रहते हैं। भक्त का अपना तो कुछ है ही नहीं। वह जो भी करता है प्रभु पूजा के ही निमित्त करता है। वह दन्त धावन, शौच, स्नान, तथा भोजन आदि जो भी करता है प्रभु सेवा के ही निमित्त करता है। वृक्ष लगाता है तो इसीलिये कि इन पर जो पत्र, पुष्प तथा फल आदि आवेंगे, वे प्रभु की सेवा में लगेंगे। साराश यह है कि वह जो भी लौकिक वैदिक क्रिया करता है सब हरि सेवानुकूल ही करता है। उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की प्रत्येक चेष्टा सदा सर्वदा मेरे निमित्त ही

होती है। वाणी से वह जो बोलता है वह भी मेरे ही गुणों का गान करता है।

११—नामगुणानुकथन—जप, कीर्तन, स्तुतिपद, गान करते समय भगवान् के नामों का उनके गुणों का तो उच्चारण होता ही है। साधारण बातों में भी सदा सर्वदा मेरे ही गुणों का गान हो। थोडा ठंडा जल पिया तुरन्त बोल उठे--अहा! भगवान्

कितने दयालु हैं देखो जल रूप में जीवन बनकर उपस्थित हो रहे हैं। बडी भारी गरमी लग रही है कहीं से शीतल वायु आ गयी अहा! भगवान् ने कैसी वायु भेज दी। जाडे से काँप रहे हैं, अग्नि मिल गयी, समझ लिया भगवान् ही आ

गये हैं। साराश यह है दुःखमें सुख में वाणी से जो भी निकलें भगवान् के गुणानुवाद ही निकले। सदा उनकी कृपा का ही अनुभव करके वाणी बोले। ग्यारहवॉं साधन है मन को भी सदा मुझ में ही लगाये रहना।

११—मानसिक समर्पण—"जो भी काम करे उसे मेरे ही अर्पण कर दे। मन को इधर उधर भटकने से रोके। जब मन इधर उधर भटकेगा, तो अनर्थ करेगा मनमानी करेगा, अपने मे कर्तापने का अभिमान आरोपित करेगा जिससे उन कर्मों के फलों का भी उसे भोक्ता होना होगा। जब मन को मुझ में लगा कर मेरे निमित्त जो कार्य करेगा उसे सुख दुख आदि का भोग भी न करना पडेगा। वह मन से यही सदा सोचता रहेगा—'मैं करने कराने वाला तो हूँ नहीं। सब तुम्हीं करते हो, तुम्ही कराते हो और इन के फल भोक्ता भी तुम्हीं हो और। इस प्रकार जो मुझ मे ही मन लगाकर कर्म करता है उसे कर्मजन्य दोप नहीं लगता। बारहवॉं साधन है, समस्त कामनाओं को छोड देना।

१२—कामना परित्याग—मन में कामनायें तभी उठती हैं जब अपने आप को सुखी बनाने की भावना हो। ऑंखों से सुन्दर-सुन्दर रूप देखकर हम सुखी हों, कानों से श्रुत-मधुर सगीत या हृदयहारी शब्द सुनकर सुखी हो। त्वचा से अत्यन्त सुखद वस्तुओं का स्पर्श करके सुखी हो, नासिका के सुदर सुगधित वस्तुओं को सू घकर सुखी हो, तथा रसना से स्वादिष्ट सुदर षडरस पदार्थों का स्वाद लेकर सुखी हों किन्तु मेरे भक्त की अपनी कोई कामना तो रह ही नहीं सकती, वह तो अपनी समस्त कामनाओं को त्याग देता है, मेरी कामना में मिला देता है। मैंने जब अपने भक्त प्रह्लाद से प्रसन्न होकर वर मॉंगने को कहा और यहॉं तक कह दिया कि जो भी तेरी कामना हो वही वर तू मुझसे मॉंग ले।"

तब उसने बड़ी दीनता से कहा—'प्रभो ! मैं तो स्वभाव से ही कामनासक्त हूँ, फिर आप मुझे वरों का लोभ क्यों दे रहे हैं। इन कामनाओं से डरकर ही तो मैंने आपके चरण कमलों का सहारा लिया है। अतः मुझे आप लोभ में न फँसावें।"

मैंने कहा—"ना, भैया ! मेरी इच्छा तुझे कुछ देने की है, तू चाहे जो माँगले। मुझसे कुछ न कुछ तो तुझे माँगना ही होगा।"

तब उसने कहा—"अच्छा, प्रभो ! जब आप आग्रह ही कर रहे हैं और आज्ञा ही दे रहे हैं तो मैं आपकी आज्ञा को कैसे टाल सकता हूँ। यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं ना आपसे यही याचना करता हूँ, कि मेरे हृदय में किसी प्रकार की कामनाओं का अंकुर ही उत्पन्न हो। क्योंकि जहाँ मनुष्य के मनमें कैसी भी सासारिक कामना उत्पन्न हुई कि तहाँ उसके प्राण इन्द्रिय, मन, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, ह्री, श्री, तेज, स्मृति तथा सत्य आदि सभी नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। जिस समय मनुष्य अपने हृदय में स्थित समस्त कामनाओं को त्याग देता है, तभी उसे भगवद् भाव की प्राप्ति हो जाती है।"

उद्धव ! यही मेरे भक्तो की भावना होती है वे मेरे लिये समस्त कामनाओं का परित्याग कर देते हैं, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक यहाँ तक कि वे मेरी सेवा के पीछे मोक्ष तक को ठुकरा देते हैं। वे मेरे अतिरिक्त और किसी भी वस्तु की स्वप्न में भी कामना नहीं करते।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् ने उद्धवजी को भक्ति के बारह परम साधन बताये अब शेष दो को मैं फिर बताऊँगा। आज रामजी की इच्छा से कुछ प्रसाद अधिक हो गया। कोई बात नहीं 'अधिकस्याधिकं

फलम्' तनिक विश्राम लेकर शेष साधनों को भी सायंकाल तक सुख से सुनाऊँगा। आप सब सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

चेष्टा मेरे हेतु करै अङ्गनिकी सबई।
करै गान गुण सतत उचारै बानी जबई॥
जो कछु कारज करै मोइमह चित्त लगावै।
मनसा वाचा कर्म सदा मोईकूँ ध्यावै॥
जगकी जितनी कामना, तिनि सब कूँ मन तैं तजे।
जग के नाते तोरि सब, केवल मोईकूँ भजै॥

—'—

भक्ति के शेष साधन

(१२८९)

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम्।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते॥*
(श्री भा० ११ स्क० १९ अ० २३, २४ श्लो०)

छप्पय

मम हित धन अरु भोग तजै सुख सबरे मन तैं।
करै यज्ञ व्रत दान हवन जप तप जो तन तैं॥
मम अरपन करि देइ न अपने महँ कछु राखै।
मैंने यह शुभ करयो न कबहूँ मुख तैं भाखै॥
जो इन धरमनि कूँ करें, पालन श्रद्धा सहित सुनि।
होवै प्रकटित भक्ति मम, का तिनिकूँ अवशेष पुनि॥

संसारी भोग तो प्रारब्धानुसार सूकर कूकर सभी योनियों

---

*श्रीभगवान् उद्धवजी से भक्ति के शेष साधन बताते हुए कह रहे हैं--"उद्धव! मेरे लिये धन का परित्याग करना तथा भोगों तथा सभी संसारी सुखों को छोड़ देना, जो भी यज्ञ, दान, हवन, जप, तप तथा व्रत आदि किया जाय उसे मेरे ही निमित्त करना उद्धवजी! इन्हीं धर्मों का पालन करते हुए समर्पण करने वाले लोगों को मेरी भक्ति उत्पन्न होती है और यदि जिसके हृदय में मेरी भक्ति उत्पन्न हो गयी तो फिर उसके लिये करने कराने को शेष ही क्या ? फिर उसे किस पदार्थ की कामना रह सकती है ?

प्राप्त हो सकते हैं, इन्हे पा लेना न कोई पुरुषार्थ है और न इसमें कोई बडाई या प्रशंसा की बात है। मानव जीवनकी सार्थकता तो इसीमे है कि हृदयमे भगवत भक्ति उत्पन्न हो जाय। मनमें तभी तक ये वासनायें उत्पन्न होती है जब तक भगवान्‌की भक्तिका प्रादुर्भाव नहीं होता। तभी तक मनुष्य इच्छा करता है यह भी हो, वह भी हो, यह भी मेरा हो जाय, वह भी वस्तु मेरे पास आ जाय, इसका भी भोग कर लूँ इसे भी ले लूँ। जहाँ भक्तिभवानी ने हृदय मन्दिरमे प्रवेश किया, तहाँ सभी सन्सारी इच्छायें समाप्त हो जाती हैं, न फिर भोगों की वासना रहती है, न किसी अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा ही अवशेष रहती है। जैसे अग्निकी ज्वाला जलने पर अंधकार स्वतः ही भाग जाता है, अतः शास्त्र में बताये हुए साधनों को इस अभिलाषा से करते रहना चाहिये कि हमारे हृदय में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हो जाय।

सूतजी कहते हैं"—मुनियो! आनंद कंद भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी ने भक्ति के मुख्य साधनों मे से बारह साधनो को महा भागवत श्री उद्धव जी के प्रनि बताया अब शेष दो साधनों को बताते हुए कहते हैं—उद्धव! तेरहवाँ साधन है मेरे निमित्त अनुभोग और सुख को त्याग देना।

१३–धन, भोग और संसारी सुखों का त्याग—सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! संसारी लोगों को धन से बढ़ कर कोई वस्तु प्यारी नहीं होती। न जाने इस धन में कैसा अद्‌भुत आकर्षण है, कि मनुष्य इसके लिये प्राणों का पण लगा देता है, जिसको धन के प्रति लोभ नहीं वह संसारी प्राणी नहीं वह तो दिव्य लोक का जीव है। लोग धन के लिये प्राणों को छोड देते हैं, प्राण जाय पैसा न जाय, यह कहावत प्रसिद्ध है। देखो चोर प्राणो का पण लगाकर ही दूसरों के घर में घुस जाता है, सैनिक

कुछ पैसों के पीछे ही युद्ध में जाकर कट मर जाते हैं, व्यापारी बड़े बड़े पोतों पर चढ़कर प्राणों को हथेली पर रखकर सात समुद्र पार जाते हैं, यन्त्र चलाने वालों का सदा सर्वदा एक पैर मृत्यु के मुख में ही रहता है न जाने कब दूसरे पैर को भी खींचले, किन्तु पैसे के लालच से वे मृत्यु का आलिंगन करते रहते हैं श्रावण भादों की बढ़ी चढ़ी वेगवती नदी में उस पार से इस पार लकड़ हारे लकड़ी बेचने आते हैं और तैरकर ही जाते हैं, नित्य प्रति उन्हें मृत्यु के मुख में जाना आना पड़ता है।

भूख शान्त करने को ही द्रव्योपार्जन किया जाता हो सो भी बात नहीं, किन्हीं किन्हीं को पैसे के प्रति अत्यधिक मोह होता है, अपनी सगी स्त्री को भोजन वस्त्र नहीं देते, बच्चों को भूखों मरने देते हैं, स्वयं भी नहीं खाते किन्तु रुपयों को जोड़ जोड़कर रखते जाते हैं। बहुत से भिक्षुको पर-जो दिन भर पाई पैसा के लिये गिड़ गिड़ाते रहते हैं—मरने पर सहस्रों लाखों रुपये निकलते हैं। एक राजा थे उनकी रानी को रोग हुआ, बाहर से चिकित्सक इसीलिये नहीं बुलाया कि उसे कुछ देना होगा, अधिक अस्वस्थ होने पर उनके भाई के यहाँ भेज दिया। वे जब वन में आखेट को जाते तो घर से रोटी बनवा कर ले जाते उन्हें ही दिनों तक खाते। एक भृत्य को उन्होंने इसी लिये अपनी सेवा से हटा दिया कि उसने बासी रोटी कुत्ते को डाल दी इसी प्रकार के अनेकों घटनायें हैं धन के प्रति संसारी लोगों की बड़ी ममता रहती है। सब जानते हैं यह धन साथ न जायगा। यहीं रह जायगा, फिर भी ममता छोड़ी नहीं जाती। ऐसे धनको जो भगवान् के लिये व्यय कर देता है, भगवान् के उत्सव पर्वों पर हृदय खोल कर लगा देता है। भगवत् भक्तों को श्रद्धा सहित भोजन कराता है, उनकी सेवा में धन का प्रसन्नता पूर्वक उपयोग करता है, ऐसे उदार मना प्राणी के हृदय में अवश्य ही भगवान् की भक्ति उत्पन्न

होगी। भगवान् के निमित्त धन का व्यय करना यह भक्ति मार्ग का परम साधन है। इसी प्रकार भोगों का भी परित्याग करना है।

शरीरःधारियों को संसारी भोगों के प्रति इतनी आसक्ति है कि हम दूसरों के सुखों की कुछ भी अपेक्षा न रख कर स्वय ही भोगों को भोगना चाहते हैं। इन्द्रिय जन्य सुखों के प्रति स्वाभाविक ममता होती है। जिह्वा चाहती है, सदा सुन्दर स्वादिष्ट लुचुलुचे, कुरु कुरे सुरसुरे, पदार्थ खाने को मिलते रहें। नेत्र चाहते हैं सदा सुन्दर शृंगार मय वस्तुएँ देखने को मिले। घ्राणेन्द्रिय चाहती हैं, अत्यंत सुगंधित कामोद्दीपक पदार्थ सुंघनेको मिले। श्रवण सरस सुखद सङ्गीत तथा कामिनियों की कोमल मधुमय वाणीको सुनने के लिये समुत्सुक बने रहते हैं। त्वचा सुखद मृदुल रोमांच कर देने वाले पदार्थों को चाहती हैं। इन भोगोंके उपभोगसे और भी विषय वासना बढ़ती है। विषयी लोग संसारी भोगोंको ही सर्वोपरी मानने लगते हैं। ऐसे भोगोंको भगवानके निमित्त त्यागा जाय तो चित्त विषयोंसे हटकर भगवान्की ओर लगने लगेगा। इसके लिये व्रत नियम आवश्यक हैं कि अमुक काल तक अमुक अमुक वस्तुको खायँगे, इतने दिन उपवास करेंगे। भूमिपर शयन करेंगे, मृदुल बिस्तर पर शयन न करेंगे आदि आदि इस प्रकार भगवान् के निमित्त भोगोंका त्याग करनेसे मनकी मलिनता मिटती है।

इसी प्रकार भगवान्के निमित्त संसारी सुखोंका भी परित्याग करना चाहिये। विवाहमें पुत्रजन्ममें तथा अन्यान्य सांसारिक सम्बन्धोंके कारण एक प्रकारकी लौकिक सुखानुभूति होती है, इस प्रकार की सभी सुखानुभूतियोंका मनसे परित्याग करनेसे भगवत् भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। धन, भोग्य पदार्थ और संसारी सुखोंका परित्याग करना भगवद् भक्तिके साधनोंमें तेरहवाँ साधन है। चौदहवाँ साधन भगवान् बताते हैं जो भी कुछ यज्ञ

दान, हवन, जप, तप तथा व्रत किये जायँ वे सब मेरे ही निमित्त किये जायँ।

१४–ब्रह्मार्पण बुद्धि से कर्म करना—भगवान् कह रहे हैं–उद्धव ! सबसे अंतिम और सबसे श्रेष्ठ साधन है जो कार्य किया जाय प्रभुप्रीत्यर्थ ही किया जाय। जैसे बलिवैश्वदेव दर्श, पौर्णमास्य, चातुर्मास्य, पशु यज्ञ सोमयज्ञ या अन्यान्य प्रकार के जितने यज्ञ हैं, वे बिना लौकिक फल की इच्छा के ब्रह्मार्पण भाव से किये जायँ। यज्ञ याग करने के अनंतर विनीत भाव से कहे इस यज्ञ कर्म से सर्वान्तर्यामी भगवान् प्रसन्न हों, यह यज्ञ मेरे लिये न होकर ब्रह्म के अर्पण हो। उन्होंने ही साधन जुटाये, उन्होंने ही सामग्री उपलब्ध की उन्होंने ही प्रेरित करके स्वयं किया, वे ही इसके फल के भी भागी हों।

इसी प्रकार भूमि, गौ, कन्या, वस्त्र, आभूषण, अन्न, जल, तिल, तैल, वाहन, भाजन तथा अन्यान्य सुवर्णादिधातु और विविध वस्तुओं का दान करे तो उनसे कोई संसारी भोग स्वर्गादि सुख न चाहे, दान करने के अनंतर यही कहे कि इस दान रूप कर्म से सबसे दयालु दाता दयानिधि श्रीहरि प्रसन्न हों।

हवनीय पदार्थों से अग्नि में हवन करे या खीर, हलुआ माल पूआ आदि ऐसे सरस सुखद स्वादिष्ट हृद्य पदार्थों से जो मधुर गरमा गरम हों जिनमें से घृत चू रहा हो उनसे ब्राह्मणों के मुख में हवन करे तो इस हवन से भी भगवत् चरणारविन्दों की भक्ति ही चाहे। हवन के समस्त फलों को भगवत् अर्पण कर दे।

गायत्री, अष्टादशाक्षर, द्वादशाक्षर, अष्टाक्षर, षडाक्षर, चतुरक्षर, द्विक्षर तथा एकाक्षर आदि मंत्रों का जप करे उसे भी केवल भगवत् प्रीत्यर्थ ही करे। मेरे इस तप जप के अधिष्ठातृ देव प्रसन्न हों। इसी प्रकार किसी भी प्रकार का तप करे उसे भी प्रभु

प्रीत्यर्थ ही करे चान्द्रायणादि जो व्रत करे वे भी भगवान् की भक्ति के ही निमित्त करे।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो! निष्काम भाव से कम करने से क्या होता है। संसार मे सभी काम किसी न किसी कामना से ही होते हैं, बिना कामना के कार्य करने मे प्रवृत्ति ही नहीं होती।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! किसी स्वार्थ को रखकर काम करना तो वणिक् वृत्ति है, व्यवहार है। हम यह देते हैं, इसके बदले मे तुम हमे यह दो। इस प्रकार के व्यवहार मे प्रेम नहीं होता वह तो रुखाई का व्यवहार है। एक भृत्य है उसे नियत वेतन मिलता है, नियमित काम करता है, जिस दिन काम नहीं करता उस दिन का वेतन काट लिया जाता है, अपराध करता है उसे निकाल बाहर करते हैं, उसके प्रति ममता नहीं, सहानुभूति नहीं अपनापन नहीं। दूसरा है जो किसी कामना से सेवा नहीं करता, वेतन भी नहीं चाहता, उपकार बुद्धि से भी नहीं करता, केवल स्वामी की प्रसन्नता के लिये ही कार्य करता है, तो उसकी निष्काम भावना से स्वामी का उसके प्रति अनुराग ममत्व, अपनापन या प्रेम तो होता ही है, साथ ही उसे भृत्य से अधिक अन्य वस्तुओ की प्राप्ति अनायास बिना ही प्रयत्न के हो जाती हैं। जब स्वामी ही अपने हो गये तो उनकी सभी वस्तुएँ अपनी हैं उनके उपयोग करने मे संकोच ही कैसा? सत्-पिता की सभी वस्तुएँ सत्पुत्र की ही तो होती हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त धर्मों का आत्म समर्पण बुद्धि से पालन करता है अर्थात् उन्हें केवल स्वामी के ही निमित्त कर्तव्य बुद्धि से करता है, तो उसके हृदय मे मेरी भक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो! आपकी भक्ति हृदय मे हो जाती है, तो फिर क्या होता है, भक्ति को प्राप्त करके भक्त का क्या

कर्तव्य रह जाता है ?"

यह सुनकर भगवान हँस पड़े और बोले—"उद्धव! जिसने अपने पेट को कंठ तक खीर, मोहनभोग, मालपुआ अन्य स्वादिष्ट पदार्थों से भर लिया है क्या उसके लिये फिर कुछ अन्य खाने की इच्छा रहती है क्या! जिसने भर पेट अमृतपान कर लिया है उसके लिये फिर कुछ पीने की इच्छा शेष रहती है क्या! जिसने श्रद्धा सहित गंगाजी में स्नान कर लिया उसके लिये फिर किसी अन्य तीर्थ में स्नान की आवश्यकता है क्या? जिसने श्री मद्भागवत को पढ लिया उसे फिर अन्य ग्रन्थों के पढ़ने की आवश्यकता रहती है क्या? इसी प्रकार जिसे मेरी निष्काम भक्ति प्राप्त हो गयी, फिर उसे किसी अन्य पदार्थ की इच्छा रह सकती है क्या?"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ, प्रभो! आपका यह कहना तो यथार्थ है, किन्तु फिर भी आपके भक्त बड़े ज्ञानवान् वैराग्यवान् तथा धर्म प्रेमी होते हैं, ये गुण उन्हें कैसे प्राप्त होते हैं ?"

भगवान बोले—"उद्धव! तुम गोकुल से वृन्दावन जाओ तो मथुरा का दर्शन तो बिना प्रयास के बीच में ही हो जायगा। तुम काँच के बर्तन मँगाओ तो काष्ठ की पेटिका पुआल आदि की प्राप्ति तो बिना इच्छा के ही हो जायगी। जो मेरी भक्ति करेगा, उसे सद्गुण तो स्वतः ही प्राप्त हो जायँगे। इसी प्रकार मेरे भक्तों को ज्ञान, वैराग्य तथा धर्म की प्राप्ति हो जाती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"इन गुणों की प्राप्ति कैसे होती है प्रभो।"

भगवान् बोले—"देखो, उद्धव निष्काम भाव से सत्कर्म करने से चित्त सत्वगुण प्रधान हो जाता है, सत्वगुण के उद्वेग से हृदय भर आता है, सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छा जाता है, स्वच्छ निर्मल प्रकाश दृष्टिगोचर होता है, शनैः शनैः वह उद्वेग

शान्त होता है, तो जो, चित्त की वृत्ति ससारी पदार्थों में लगी हुई थी वह उलट कर आत्मा मे लग जाता है, चित्त जहाँ आत्मा की ओर मुडा कि उसे धम, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य स्वय प्राप्त हो जाते हैं, जैसे कोई सुन्दर मजी हुई पुष्प फलो से लदी हुई वाटिका मे होकर अपने गन्तव्य मार्ग को जाय, तो इच्छा न रहने पर उन पुष्पों की हृदय को प्रफुल्लित करने वाली गध स्व य ही प्राप्त हो जायगी, उसके लिये प्रथक प्रयास न करना पडेगा।"

भगवान् कह रहे हैं—"उद्धव ! यह सब मन का खेल है, गुणों का विस्तार है। यह चित्त धुले हुए स्वच्छ वस्त्र के समान है, जिस रग मे भी रग दो उसी के रग का हो जाता है। इस चित्त को विकल्प रूप ससार में लगा दो तो वह इन्द्रिया द्वारा उसी ससार में दौडता रहेगा यह ला, वह ला, इसे एकत्रित कर, उसका उपभोग कर, यह भी मेरा हो जाय, उस पर भी मेरा स्वत्व हो जाय। इस प्रकार इन असत् मिथ्या पदार्थों में मोह करेगा तो वे ही मिलेंगे। क्याकि जैसे का सग होता है वैसे ही बुद्धि बन जाती है। इसी प्रकार रजोगुण प्रधान और मिथ्या पदार्थों में प्रीति करने वाले चित्त को विपयय कहलाने वाले अध-र्मादि की ही प्राप्ति होती है।"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ, प्रभो ! अब मेरी समझ में आ गया। इन भागवत धर्मो का निष्काम भाव से पालन करने पर ही आपकी भक्ति प्राप्त होती है और धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यादि गुण तो उसे अनायास बिना प्रयत्न के प्रसगवश लबार में मिल जाते हैं। अब मेरे कुछ प्रश्न और शेप रह गये हैं, आज्ञा हो तो उन्हें पूछूँ ?"

भगवान् बोले—"हाँ पूछो, क्या पूछना है ?"

उद्धवजी बोले—'भगवान् ! आपने अभी धर्म, ज्ञान,

वैराग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति बतायी धर्म क्या है ? मैं जानना चाहता हूँ।"

हँसते हुए भगवान् बोले—"उद्धव ! धर्म की तो बड़ी लम्बी व्याख्या है, नाना ऋषियों ने धर्म शास्त्रों में धर्म की ही विविध भांति से व्याख्या की है, किन्तु मैं अत्यंत ही संक्षेप धर्म की सरल सुगम व्याख्या बताये देता हूँ जिस कार्य से मेरी भक्ति प्राप्त हो जाय वही धर्म है और इसके विपरीत जो मेरी भक्ति से विमुख करे वह अधर्म है।"

उद्धव बोले—"अच्छा, धर्म की व्याख्या तो मैं समझ गया, अब कृपा करके ज्ञान की भी ऐसी ही सरल सुगम संक्षिप्त व्याख्या बता दें।"

भगवान् बोले—"समस्त शास्त्रों मे ज्ञान का ही तो वर्णन है, गुरुदेव अज्ञान का नाश करके ज्ञान का ही तो प्रकाश करते हैं। ज्ञान की भी शास्त्रों मे विशद व्याख्यायें हैं, किन्तु तुम संक्षेप में यों समझ लो कि सम्पूर्ण चरा-चर संसार मे केवल एक ही आत्मा का अनुभव होने लगे। भेद भाव मिथ्या प्रतीत हो उस एकात्म्य दर्शन का नाम ज्ञान है।"

उद्धवजी ने पूछा—"अच्छा प्रभो ! वैराग्य किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—'उद्धव ! ये जितने भी संसारी विषय हैं, ये सभी त्रिगुणात्मक हैं, प्राणी इनमें राग करके ही जन्म मरण के चक्कर में फँस जाता है, इनसे चित्त को हटा लेने से-विरत होने से मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होता है। अतः इन विषयों में अनासक्त रहना ही वैराग्य है।

उद्धव जी ने कहा —"भगवान् ! धर्म, ज्ञान और वैराग्य की व्याख्या तो मैं समझ गया, अब कृपा करके ऐश्वर्य क्या है इसे बताइं।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! मैं पीछे, अणिमा गरिमा महिमा आदि सिद्धियों का वर्णन कर ही चुका हूँ इन सिद्धियों का नाम ही ऐश्वर्य है। यद्यपि ये मुक्तिमार्ग में सभी साधकों को मिलती हैं, किन्तु साधक इनमें फँसते नहीं इन्हें पार करके आगे बढ़ते हैं, जो इनमें फँस जाते हैं, वे मोक्षमार्ग से दूर हट जाते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् ने उद्धव जी को चौदह भक्ति के साधन बताये, उनको मैंने आप से कहा—अब उद्धव जी भगवान् से जैसे कुछ प्रश्न करगे और भगवान् उनका जो उत्तर देंगे उस पावन प्रश्नोत्तर प्रसंग को मैं आप से कहता हूँ, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

बढ़ै सत्व चित शान्तहोहि आत्मा महँ जावै।
धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यहिँ लावै॥
यदि चित जग महँ लगै विषय भोगनि महँ भटकै।
जनम मरन अरु रोग शोक दुखनि महँ पटकै॥
भक्ति बढ़ै सो धर्म है सब महँ आत्मा ज्ञान है।
अणिमादिक ऐश्वर्य है, विषय विरत वैराग्य है॥

—o—

पावन प्रश्नोत्तर

(१२९०)

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वारिकर्शन।
कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो॥*

(श्री भा ११ स्क० १९ अ० २८ श्लो०)

छप्पय

उद्धव बोले—"प्रभो! प्रश्न कछु पूछूँ पावन?
पूछो, बोले कृष्ण—देहुँ उत्तर मन भावन॥
'यम कितने हैं नाथ! कहे उद्धव! बारह सुनि।
सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अभय पुनि॥
आस्तिकता, ह्री, मौन अरू, क्षमा, असञ्चय दश भये।
थिरता, विषय असंगता, यों सब बारह है गये॥

पारमार्थिक प्रश्न और उत्तरों का एक मात्र ध्येय यही है, कि किसी न किसी प्रकार जीवन में सद्गुणों का विकास हो। समस्त वेद पुराण तथा धर्मशास्त्र के अन्यान्य ग्रन्थों में बार बार इसी

*उद्धव जी भगवान से पूछ रहे हैं—"हे प्रभो! यम कै प्रकार के हैं और हे रिपुकर्शन! नियमों को भी बतावें। शम किसे कहते हैं, दम किसका नाम है और हे कृष्ण तितिक्षा तथा धृति के सम्बन्ध में भी बतावें।"

बात पर बल दिया है, कि जो सदा सद्गुणों का सेवन करता रहेगा सत्य अहिंसा आदि दैवी सम्पत्ति के गुणों को अपनाता रहेगा, उसके लिये भगवत् प्राप्ति कठिन नहीं रहती। उसे अपने अन्तः करण में ही भगवान् दिखायी देने लगते हैं।

इसीलिये पुन पुनः पदे पदे इन सद्गुणों का उल्लेख है इनकी महिमा गायी है। मानव समाज में सुख शान्ति इन सद्गुणों क प्रसार से ही सकती है, आसुरी सम्पत्ति तथा दुर्गुणों के प्रसार प्रचार से शान्ति भङ्ग हो ही जाती है और मनुष्य अपने यथाथ ध्येय से च्युत होकर मोक्ष से दूर हट जाता है अतः मोक्षार्थी का सदा सद्गुणों का ही सेवन करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब उद्धवजी ने भगवान् से प्रश्न पूछने की आज्ञा माँगी और भगवान् ने प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दी। तब उद्धवजी उनसे पूछने लगे—"भगवन् ! आपने अनेक बार यम नियमों पर बहुत बल दिया है, अतः मैं जानना चाहता हूँ कि यम कितने प्रकार के हैं ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धवजी ! भिन्न भिन्न ऋषियों ने यमों की संख्या भिन्न भिन्न बतायी है। कोई यम पाँच ही बताते हैं किसी के मत मे दश हैं, किन्तु मैं तो यमों की संख्या बारह बताता हूँ। मेरे मत में बारह यम हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"बारह यम कौन कौन से हैं भगवन् !"

भगवान् बोले—"अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असङ्गता, ह्री, असञ्चय, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय। ये ही बारह यम हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! इनकी व्याख्या करके समझावें।"

भगवान् बोले—"अरे, भाई ! अनेकों बार तो इनकी व्याख्या कर चुका हूँ, सत्य अहिंसादि सद्गुण इतने प्रसिद्ध हैं, कि इनकी व्याख्या की आवश्यकता ही नहीं। बार बार बताने पर भी प्रसङ्गानुसार इनकी अति संक्षिप्त व्याख्या मैं करता हूँ।'

१—अहिंसा—मनसा, वाचा कर्मणा कभी किसी प्राणी को दुख देने का प्रयत्न न करना।

२—सत्य—जो बात यथार्थ हो, जैसे देखी, सुनी या अनुभव की हो, उसे ही प्रकट करना।

३—अस्तेय—किसी भी वस्तु की चोरी न करना दूसरे को वस्तु पर छिपकर अपना अधिकार न कर लेना।

४—असंगता—किसी भी संसारी वस्तु में आसक्त न हो जाना। सबसे निस्पृह बने रहना।

५—ह्री—लोक लाज का सदा ध्यान रखना। बुरे कामों को करने में सदा लज्जा करना। बड़े बूढ़ों का सदा संकोच करते रहना।

६—असञ्चय—आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का व्यर्थ सञ्चय न करना।

७—आस्तिकता—वेद वचनों में तथा आप्त वचनों में श्रद्धा रखना। भगवान् हैं इस पर विश्वास रखना।

८—ब्रह्मचर्य—अपत्नी व्रती पुरुषों को सदा अष्ट प्रकार के मैथुनों से बचे रहना। गृहस्थियों को स्वपत्नी में ही ऋतु गामी होना।

९—मौन—अनावश्यक बातों को कभी न बोलना, सदा वाणी का संयम करते रहना।

१०—स्थिरता—जो भी विवेक बुद्धि द्वारा स्थिर करे, उससे लोभ-वश विचलित न होना सदा दृढ़ता के साथ उस पर स्थिर बने रहना।

११—क्षमा—सामर्थ्य रहते हुये भी अपने अपराध करने वाले पर क्रोध न करना। बदले की भावना से उस पर प्रहार न करना।

१२—अभय—सत्य मार्ग से किसी प्रलोभन द्वारा दुखों के कारण विचलित न होना। भय से अन्याय के सम्मुख सिर न झुकाना।

ये ही बारह यम हैं। इनके ही पालन करने वालों को यमी कहते हैं।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! नियम कितने हैं?"

भगवान् ने कहा—"मेरे मत मे नियम भी बारह ही हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"वे बारह नियम कौन कौन से हैं, कृपा करके सव्याख्या उन बारहों नियमों को बताइये।"

भगवान् ने कहा—"शौच, जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथिसेवा, मेरा पूजन, तीर्थ भ्रमण, परोपकार की चेष्टा, सन्तोष और गुरु-सेवा अत्यन्त संक्षेप मे इनकी व्याख्या भी सुनो।

१,२—शौच—भीतर बाहर से पवित्र रहना। भीतर की पवित्रता सद्गुणों से होती है, बाहरी पवित्रता मिट्टी, जल तथा पंचगव्यादि पदार्थों से होती है। इसी प्रकार एक भीतरी शौच एक बाहरी शौच दो हुये।

३—जप—इष्ट मन्त्र का बार बार उच्चारण करना इसी का नाम जप है। वह मानसिक, उपांशु और वाचिक तीन प्रकार का होता है।

४—तप—शास्त्रीय विधि से व्रत उपवासादि द्वारा शरीर को तपाना।

५—होम—शास्त्रीय विधि से शास्त्रोक्त हवनीय पदार्थों द्वारा विधिवत् अग्नि में हवन करना।

६—श्रद्धा—वेद, गुरु तथा श्रेष्ठ पुरुषों के वचनों पर आस्था

रखना। श्रेष्ठों के प्रति हृदय से आदर प्रदर्शित करना।

७—आतिथ्य—अपने घर पर जो कोई भी अतिथि आ जाय, उसकी प्रेम पूर्वक सेवा शुश्रूषा करना। कभी उसे विमुख न जाने देना।

८—मदर्चन—मेरी अर्चा विग्रह की विधिवत् श्रद्धा सहित नित्य पूजा करना।

६—तीर्थाटन—शास्त्रों मे जो तीर्थ कहे हैं। ऐसे काशी, प्रयाग, पुष्कर तथा अन्यान्य तीर्थों में भ्रमण करना।

१०- परार्थेहा—संसार मे प्रायः सभी लोग दुखी हैं। अपने शरीर से ऐसी चेष्टा करते रहना जिससे सबका उपकार हो, सब सुखी हों।

११—सन्तोष—भगवत् इच्छा से समय पर जो भी कुछ प्राप्त हो जाय उसी में सन्तुष्ट रहना।

१२—आचार्य सेवन—जो अपने ज्ञान दाता, मंत्रदाता विद्यादाता या जन्मदाता गुरु हैं उनकी सेवा में संलग्न रहना। विशेष कर विद्यादाता आचार्य की ही करना।

ये ही बारह नियम हैं। अब तुम और जो पूछना चाहो वह पूछो। यम नियमों के पालन करने वाले पुरुषों की सभी कामनायें पूर्ण होती हैं।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! शम किसे कहते हैं? शम का लक्षण मुझे बतावें।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! समस्त सांसारिक विषयों का शम न होकर बुद्धि एक मात्र मुझ परमात्मा में ही लग जाय, इसी का नाम शम है सर्वात्म भाव से बुद्धि की अविच्छिन्न गति मेरे ही में तादात्म्य हो जाय।"

उद्धवजी ने पूछा—"अच्छा भगवन्! दम किसका नाम है?"

भगवान् ने कहा—"भैया! ये इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। जिह्वा

चाहती है, सदा सुन्दर रसीली स्वादिष्ट पदार्थों को चखा करें। आँखें सुन्दर श्रृङ्गार युक्त रूप दर्शन चाहती हैं इसी प्रकार जैसे बहु पत्नी वाले पुरुष को भिन्न भिन्न स्वभाव को पत्नियाँ दु:ख देती हैं अपनी अपनी ओर खींचती हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियाँ पुरुष को विषयों के लिये विवश करती हैं। इन सभी इन्द्रियों का दमन करके इन पर अपना अधिकार जमाये रखने का नाम ही दम है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! शम दम तो मैंने समझ लिये, अब तितिक्षा का अर्थ बतावें।"

भगवान् ने कहा—"बिना प्रतीकारके जो आये हुये शीतोष्णादि दु:खों को सह लिया जाता है उसी का नाम तितिक्षा है। तितिक्षु न तो जाडों में रूई या अग्नि खोजता है और न गरमियों में हिम तथा शीतल स्थान उसे जो भी प्राप्त होता है उसे साहस के साथ सहता है। उसी का नाम तितिक्षु है।"

उद्धवजी ने कहा—"धृति अथवा धैर्य किसका नाम है।

भगवान् ने कहा—उद्धव! संसार में दो वेग बड़े ही प्रबल होते हैं, एक तो रसना के स्वाद का वेग दूसरा काम का वेग। इन दो वेगों का साहस के साथ निग्रह करने का ही नाम धैर्य है। विकारों के कारण समुपस्थित होने पर भी जिह्वा और उपस्थ के भोग सम्मुख रहने पर भी जिसके मन में विकार उत्पन्न नहीं उन्हें भोगने की इच्छा नहीं होती वही धैर्यवान् पुरुष है।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! आप अत्यन्त संक्षेप में सब की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या बता देते हैं, मेरी इच्छा है मैं दान तपादि के सम्बन्ध में और भी प्रश्न करूँ।"

भगवान् ने कहा—"भैया! मैं मना थोड़े ही करता हूँ तुम जो भी पूछोगे उसी का मैं उत्तर दूँगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! उद्धवजी दान तपादि के सम्बन्ध में जो प्रश्न पूछेंगे उनका वर्णन मैं आगे करूँगा ।"

छप्पय

नियम बताओ नाथ ! कहे बारह सज्जन ।
भीतर बाहर शौच, होम, जप,तप, मम पूजन ॥
श्रद्धा अरु सतोष, तीर्थ-गुरुसेवा उद्धव ।
पर कारज, आतिथ्य, भये बारह पूछो अब ॥
शम, दम, धीरज, तितिक्षा, अर्थ बतावें रिपु दमन ।
शम-मम धी, गो-दमन दम, कहे तितिक्षा दुख सहन ॥

—:*:—

दानादिक प्रश्नोत्तर

(१२९१)

किं दान किं तपः शौर्यं किं सत्यमृत मुच्यते ।
कस्त्यागः किंधनं चेष्ट को यज्ञः काच दक्षिणा ॥
(श्री भा० ११ स्क० १६ अ० २८ श्लो०)

छप्पय

जिह्वा और उपस्थ विजय धृति वेद बतावें।
उद्धव बोले—'दान, वीरता, तप समुझावें॥
सत्य और ऋत, त्याग, इष्टधन, यज्ञ अर्थ विभु।
नरबल भग, बड लाभ, दक्षिणा, विद्या, ह्री प्रभु॥
हरि बोले—'है दान बड, भूत द्रोह तजिबो सतत।
मन वश करिबो शूरता, सत प्रिय बानी कहहिं ऋत॥

गुरुदेव स्वय ही प्रश्न कराते हैं और स्वय ही उन प्रश्नों का अर्थ समझाते हैं। प्रश्न करने की भी तो योग्यता होती है। अल्पज्ञ शिष्य की इतनी सामर्थ्य कहाँ है, कि गुरुदेव के उत्तर

---

*उद्धव जी भगवान् से पूछ रहे हैं—"भगवान्! दान किसे कहते हैं? तप क्या है? शूरवीरता किसका नाम है? सत्य और ऋत किसे कहते हैं। त्याग क्या होता है? इष्ट धन किसका नाम है। यज्ञ क्या है दक्षिणा किसका नाम है?"

देने के अनुकूल प्रश्न कर सके। गुरुदेव जब प्रसन्न होते हैं, बताने की इच्छा जब उनके मनमें जागृत होती है, तो प्रथम उ ही इच्छा शक्ति सत् शिष्यके हृदय में प्रवेश करती है। इच्छा के सहारे शिष्य प्रश्न करता है, गुरुदेव उसका उत्तर है। जैसे मकड़ी अपने ही मुख से सूत निकाल कर जाल रचना करता है, फिर अपने ही आप उसमें किलोल करती यह शिष्य धन्य हैं, जिन्हें निमित्त बनाकर गुरु पावन प्रश्नों उत्तर देते हैं। उन सद्गुरु के विषय में तो कहा ही क्या सकता है, जो ज्ञान के भंडार हैं और अपने उत्तरों से के अपने एक ही शिष्य के अज्ञानान्धकार को दूर नहीं करते, अपि उसे उपलक्ष्य बनाकर सम्पूर्ण संसार को उपदेश देते हैं।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे है—"मुनियो ! धैर्य त प्रश्न करने के अनन्तर उद्धवजी ने भगवान् से पूछा—"प्रभो दान किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! अन्न दे देना, भूमि दान करन कन्या दान करना, गौ किसी योग्य ब्राह्मण को दे देना। ये स दान कहलाते हैं किन्तु वास्तव में देखा जाय, तो यह दान क हुआ। सब में मैं ही रम रहा हूँ, सब मेरी ही वस्तु हैं। मे वस्तुओं को मुझे ही देना दान तो नहीं है। यथार्थ दान तो य है। सम्पूर्ण भूतों से द्रोह त्याग देना। तृण से लेकर ब्रह्मा त सब को अभय प्रदान कर देना। सबको मेरा रूप समझकर कि से भी कभी द्रोह न करना यही सबसे बड़ा दान है।"

उद्धवजी ने पूछा—"अच्छा, भगवान् तप क्या है ?"

भगवान् ने कहा—"लोग शरीर के तपाने को तप कहते हैं किन्तु मेरा मत और ही है। ये जो भोगों की इच्छायें हैं ये ही प्राणियों को सदा संतप्त करती रहती हैं, इन सांसारिक भोगों की कामनाओं को छोड़ देना मेरे मत में तो यही परम तप है। जब

तक हृदय में भोगवासनायें बनी हैं, तब तक चाहे पचाग्नि तापो या वर्षा को सिर पर सहो सब व्यर्थ है। जब कामनायें छूट जाँय, तभी समझो हमारा तप हुआ।

उद्धवजी ने पूछा —"भगवान् शौर्य किसका नाम है? शूरवीरता का भावार्थ क्या है?"

भगवान् बोले—"उद्धव! बल के द्वारा दूसरों को वश करने को ही लोग शूरवीरता कहते है। किन्तु बहुत से लोग भय के कारण ऊपर से अधीन हो जाते हैं, भीतर से तो उससे द्वेष ही रखते हैं। शूरवीरता दूसरों पर प्रकट नहीं की जाती। वह तो प्रथम अपने भीतर ही कार्य करती है। वासनामयी चित्त की बिखरी वृत्तियों को वशीभूत करने का ही नाम शूरवीरता है। जिसने चित्त की बिखरी वृत्तियों का निरोध कर लिया, वही यथार्थ मे शूरवीर है। जिसकी वृत्तियाँ वश मे नहीं है वह चाहे कितना भी बली और बुद्धिमान क्यों न हो कायर ही कहा जायगा।"

उद्धव जी ने पूछा—"भगवन्! सत्य की परिभाषा कीजिये।"

हँसकर भगवान् बोले—"जो कुछ दीखता है वह सब नष्ट होने वाला है। जो नष्ट होने वाला है वह सत्य कैसे हो सकता है। जो सबमे एक रूप से रम रहा है जो अविनाशी और सर्वान्तर्यामी है उसी को सबमे समान रूप से देखने का नाम सत्य है। समदर्शन को ही परम सत्य कहते हैं।"

उद्धव जी ने कहा— "सत्य की परिभाषा तो यह हो गयी ऋत किसे कहते हैं?"

भगवान् ने कहा—"सत्य मे झूठ मे कोई विशेष अन्तर नहीं। समदर्शन का नाम सत्य है और सत्य तथा मधुर वाणी को ही विद्वान् लोग ऋत कहते हैं। प्रायः सत्य वचन में कुछ

रुक्षता रहती है। उस रूक्षता को मिटा कर उसमें मधुरता भर देना और सत्य को विकृत न बनाना इसी का नाम ऋत है। ऐसे हित कर और मनोहारी वचन दुर्लभ होते हैं।

उद्धव जी ने पूछा— "भगवन्! शौच किसका नाम है ?"

भगवान् ने कहा—"जल तथा मृत्तिका से पवित्रता रखना यह शौच तो प्रसिद्ध ही है। वास्तविक शौच तो उसे कहते हैं, जिससे कर्मों में आसक्ति न हो। कर्मों की अनासक्ति का ही नाम यथार्थ शौच है।"

उद्धव जी ने पूछा— "भगवन्! सन्यास किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"कर्मों को करते रहना ही ग्रहण है और कर्मों के त्याग का ही नाम सन्यास है। कर्म जब तक होंगे तब तक कुछ न कुछ कर्मों का लगाव रहेगा ही। जब कर्म सर्वथा छूट जायँ, तभी समझो सन्यास हो गया।"

उद्धव जी ने पूछा—'भगवन्! प्राणियों का इष्ट धन क्या है ?"

भगवान् ने कहा— "उद्धव! लोग रुपये पैसे तथा भूमि आदि के संग्रह को धन कहते हैं, किन्तु ये सब नश्वर हैं। अविनाशी तो एक धर्म है। इसलिए वही वास्तव में इष्ट धन है। जो धर्म से हीन है वही निर्धन है।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो! यज्ञ किसे कहते हैं ?

भगवान् ने कहा—"जिससे यश ऐश्वर्य प्रकट हो वही यज्ञ है। जितने परम ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, उन सब में परम श्रेष्ठ मैं ही हूँ। यज्ञ पुरुष मेरा ही नाम है अतः मुझे ही लोग यज्ञ कहते हैं। सब यज्ञों का अधिष्ठातृ देव मैं हूँ। जिसने मेरा पूजन कर लिया, उसने मानों सब यज्ञ कर लिये।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो दक्षिणा किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—'उद्धव! दक्षिणा देवी का एक पौराणिक इतिहास है। गो लोक मे जहा मैं अपनी प्रिया राधिका के साथ नित्य विहार किया करता रहता हूँ, वहाँ मेरी करोडो गोपिकाये हैं। उन सबकी स्वामिनी श्री राधिका जी हैं। मैं सब के साथ नित्य नूतन-नूतन क्रीडायें किया करता हूँ। वहाँ की असंख्यो गोपियों में से एक सुशीला नाम की गोपी थी। वह अत्यन्त ही सुदरी, सुदती, सुभगा तथा सरला गोपी थी, एक दिन एकात में मैं उसके साथ बैठकर अत्यत प्रेम की मीठी-मीठी बाते कर रहा था। मेरे युगल चरण उसकी गोद मे रखे थे। वह भाव-विभोर होकर उन्हें सहला रही थी। इतने मे ही वहाँ राधा जी आ गयीं। मैं उनसे बहुत डरता था। द्वार खुला हुआ था, मैं सकपका गया क्या करता, तुरन्त अन्तर्धान हो गया। मुझे अन्तर्हित होते देखकर मेरी प्रिया सुशीला भी वहीं अन्तर्हित हो गयी। राधिका जी को बडा दु ख हुआ। उन्होंने उसी दु ख मे शाप दे दिया कि यदि आज से सुशाला गो लोक में आवगी तो वह भस्म हो जायगी।"

शाप की बात सुशीला ने भी सुनी अब वह क्या करती, उसने घोर तप किया। तप करके वह वैकुठ लाक वासी महाविष्णु की पत्नी महालक्ष्मी जी के शरीर में प्रविष्ट हो गयी और वहीं रहने लगी।

इधर लोग भारतवर्ष में यज्ञ याग करने लगे। लोग बडे-बडे यज्ञ करे, किन्तु उनका फल कुछ भी न हो। सब देवताओं को बडी चिन्ता हुई। ब्रह्माजी को आगे करके देवताओं का एक शिष्ट मडल जगतपति भगवान् नारायण के समीप गया। सबकी ओर से ब्रह्मा जी ने कहा—"भगवन्! हमलोग यज्ञ करते हैं किन्तु उनका फल कुछ नहीं होता इसका कोई उपाय बतावें जिससे यज्ञ का फल हो।

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, भैया ! बिना बहू के क फल मिलता है । जिस यज्ञ की तुम उपासना करते हो, वह तो अविवाहित । अविवाहित को तो सदा अपनी ही रोटियों चिन्ता लगी रहती है, वह दूसरों को क्या फल देगा ?"

ब्रह्माजी ने कहा – "महाराज ! आप सर्व समर्थ हैं, यज्ञ आपका ही रूप है, उनके लिये कोई सुशीला बहू खोज दीजिये।

सुशीला का नाम सुनते ही श्रीमन्नारायण को गो लोक गोपी सुशीला का स्मरण हो उठा उन्होंने यह भी जान लि

सुशीला तपस्या द्वारा लक्ष्मीजी के शरीर में निवास कर रही है अतः लक्ष्मीजी के शरीर से सुशीला को निकाल कर भगवान्

विष्णु ने ब्रह्माजी को दिया। ब्रह्माजी ने उसका विवाह यज्ञ के साथ कर दिया। उसी का नाम दक्षिणा हुआ। यज्ञ भगवान् इतनी सुन्दरी सुशीला पत्नी को पाकर परम प्रमुदित हुए। उन्हीं के गर्भ से फल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पितरों की पत्नी स्वधा है, अग्नि की पत्नी स्वाहा है, वैसे ही यज्ञ की पत्नी दक्षिणा है। तभी से यज्ञों में दक्षिणा देने की प्रथा प्रचलित हुई। दक्षिणा से फल मिलता है, बिना दक्षिणा के सभी शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। दक्षिणा ही महाफल को उत्पन्न करनेवाली है। महाफल है ज्ञान। अत ज्ञानोपदश वास्तविक दक्षिणा है। दक्षिणा मुझ यज्ञ पुरुष की पत्नी है और मैं स्वय ज्ञान स्वरूप हूँ। पत्नी और पति में तो भेद होता ही नहीं। अतः ज्ञानदान ही परमा दक्षिणा है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! लोग कहते हैं बलवान् ही सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। वह बल क्या है ? परम बल किसका नाम है ?"

भगवान् ने कहा—"सबसे बलवान् प्राण हैं। उन प्राणों का आयाम करना यही सबसे श्रेष्ठ बल है। प्राणायाम से बढ़कर और कोई उत्तम बल नहीं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन भग किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"मेरे समस्त ऐश्वर्य का ही नाम भग है। इसलिये मैं भगवान् कहलाता हूँ।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! परम लाभ अथवा कल्याण किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! ससारी लोग तो धन, यश, ऐश्वर्य तथा आरोग्य आदि की प्राप्ति को ही लाभ कहते हैं। किन्तु मेरे मत म तो मेरी भक्ति का प्राप्त हो जाना ही परम लाभ है। जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हो गयी उसे पूर्ण लाभ प्राप्त

हो चुका जिसे मेरी भक्ति की प्राप्ति नहीं हुई और अन्य सब कुछ सांसारिक वस्तुएँ प्राप्त हैं तो उसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह घाटे मे ही रहा ।"

उद्धवजी ने पूछा--"भगवन् ! विद्या किसका नाम है ?"

भगवान ने कहा—"आत्मा मे भेद बुद्धि का न रहना ही विद्या है। सबमे एकत्व भावना हो जाना यही विद्या है।

उद्धवजी ने पूछा--"भगवन् ! ह्री किसका नाम ?"

भगवान् ने कहा--"उद्धव ! यह प्राणी जब विषया सक्त हो जाता है, तब निर्लज्ज बन जाता है। मेरे इस व्यवहार को देखकर गुरुजन तथा समाज के लोग क्या कहेंगे, इसकी वह तनिक भी चिन्ता न करके विषयों के पीछे पागल हो जाता है, जो कार्य न करना चाहिये उसे भी कर बैठता है इसी का नाम निर्लज्जता है। और दुष्कर्मों से दूर रहना ही लज्जा या ह्री है। जिसके हृदय मे लोक मे लाज या गुरुजनों का संकोच है वह बहुत से अनर्थों से बच सकता है।"

उद्धव जी ने पूछा— 'भगवान् ! श्री किसे कहते हैं ?--"

भगवान् ने कहा— 'लोक मे श्री नाम तो लक्ष्मी का प्रसिद्ध है, किन्तु मेरे मत में तो किसी से कुछ भी अपेक्षा न रखना सदा निभय रहना, यथा शक्ति दान देना, यज्ञ करना, सत्य बोलना आदि सद्‌गुणों का ही नाम श्री है। ये सद्‌गुण जिनमें हो वे ही वास्तविक श्रीमान् हैं ।"

उद्धव जी ने पूछा— "प्रभो ! सुख किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा —"उद्धव ! संसार मे अनुकूल वेदना का नाम सुख है और प्रतिकूल वेदना का नाम दुख दोनों से ही परे हो जाने का नाम परम सुख है। सुख दुख दोनो ही परस्पर में सापेक्ष हैं, किन्तु जहाँ दोनों की ही अपेक्षा न रहे वही यथार्थ सुख है।

उद्धव जी ने पूछा—"फिर भगवान्! दुःख क्या रहा ?"

भगवान् ने कहा—'सासारिक विषयो की अपेक्षा रखना ही दुःख है। ये ससारी जितने पदार्थ हैं, सब नश्वर हैं, इन सब का परिणाम दुःखद ही है। इसलिये जितनी ही जिसे इन विषयों की अपेक्षा है, वह उतना ही अधिक दुखी है।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! अब उद्धव जी ने पंडित और मूर्खों के विषय मे जो प्रश्न किये हैं उन प्रश्नो को उत्तर सहित मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

सम दरशन ही सत्य शौच आसक्ति न करमन।
करम त्याग सन्यास, धर्म ही कह्यो इष्ट धन ॥
हौं ही उत्तम यज्ञ ज्ञान उपदेश इच्छना।
बल बड प्राणायाम लाभ अति भक्ति भावना॥
आत्मा अरु परमात्मा महँ, अभेद विद्या कही।
भग ही मम ऐश्वर्य है, दुष्कर्मनि को त्याग ह्री॥

छप्पय

उद्धव बोले—"कहैं आप 'श्री' का कू स्वामी।
सुख, दुख, पडित, मूर्ख अर्थ का अन्तरयामी॥
कौन कुपथ, का सुपथ स्वरग अरु नरक बताओ!
बन्धु कौन, घर कहा, कौन निरधन समुझाओ॥
को ईश्वर विपरीत को, धनी कौन को कृपन हैं।
मेटें मेरे मोह कूँ, प्रभु तो अशरन शरन है॥

—:०:—

पंडितादिके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर

(१२९२)

कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्चकः।
कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्कोबन्धुरुतकिंगृहम् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १६ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

सम सुख दुख-सुख कह्यो कही श्री सद्गुण संचय।
विषय अपेक्षा दुःख काम ही रिपु अति दुर्जय॥
बन्ध मोक्ष तें विज्ञ होहि सो पंडित ज्ञानी।
मैं मेरी महँ फँस्यो कह्यो मूरख अज्ञानी॥
बढ़ै सत्वगुन स्वर्ग सो, मम ढिँग लावै सो सुपथ।
बढ़ै तमोगुन सो नरक, चित चंचलकर सो कुपथ॥

एक कहावत है "सौ सयाने एक मत" इस बात में किसी भी आस्तिक का मत भेद नहीं है, कि जो भगवान् की ओर बढ़ रहा है, वही पंडित है और जो भगवान् से विमुख हो रहा है वही मूर्ख है। जीव का परम पुरुषार्थ यही है, कि प्रभुसे प्रेम करे, जो

---

*श्री भगवान् उद्धवजी से पूछ रहे हैं—"भगवन्! पंडित किसे कहते हैं? मूर्ख कौन है? पन्था किसका नाम है? उत्पथ किसे कहते हैं? स्वर्ग क्या है? नरक किसका नाम है? बन्धु किसे कहते हैं और घर क्या है?

प्रभुसे न प्रेम करके विषयोंसे प्रेम करता है, वह मानो माया द्वारा ठगा गया। वही सद्गुण है जो प्रभु प्राप्तिमें सहायक हो और वे दुर्गुण हैं, जो प्रभुसे विमुख करें संसार तो दुःख सुख पुण्य पाप आदि द्वंद्वोंका घर है, जो इसकी ओर देखता है वही दोषी है, जो इसकी ओर ध्यान न देकर गुणातीत मुक्त विशुद्ध ब्रह्मकी ओर दृष्टि रखता है वही निर्दोष है। वही सुपथगामी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब उद्धवजीके बहुतसे प्रश्नोंका भगवान्ने उत्तर दिया, तब और भी प्रश्न पूछनेकी इच्छासे उद्धवजी कहने लगे—"हे जगन्नाथ! आपके उत्तरोंसे मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है। अब मैं यह पूछना चाहता हूँ, कि पंडित किसे कहते हैं?"

भगवान्ने कहा—"उद्धव! संसारमें तो लोग उसीको पंडित कहते हैं, जो शास्त्रोंको पढ़ा हो, किन्तु शास्त्रोंको पढ़कर भी जिसे यह ज्ञान नहीं, कि कौनसे कर्म करनेसे बन्ध होता है और किन कर्मोंके आचरणसे मुक्ति होती है, तो वह वास्तवमें पंडित नहीं। पंडित तो वही है जो बन्ध और मोक्षको जानता हो।"

उद्धवजीने पूछा—"फिर भगवन्! मूर्ख कौन है?"

भगवानने कहा—"उद्धव? लोकमें तो मूर्ख उसे ही कहते हैं जो अपने सासारिक स्वार्थोंमें कुशल न हो। जो अपने धनकी भूमिकी रक्षा न करता हो, किन्तु वास्तवमें मूर्ख तो वह है जो इस शरीर तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली सासारिक सामग्रियोंमें अहंबुद्धि रखता है। "मैं विद्वान् हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ, अन्य सब मुझसे नीच हैं। यह मेरा घर है, यह मेरी सम्पत्ति है, इसका मैं स्वामी हूँ, कोई दूसरा इसकी ओर दृष्टि उठाकर भी देखेगा, तो मैं उसका सिर फोड़ दूँगा।" इस प्रकार जो अहंता ममतामें फँसकर प्राणियोंसे राग द्वेष रखता है वही मूर्ख है।"

उद्धवजीने पूछा—"भगवन् ? सुमार्ग क्या है ?" पुण्य पन्थ किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! लोक मे तो सभी अपने अपने पन्थ को सुपथ बतलाते हैं, किन्तु जिसके द्वारा मेरी प्राप्ति होती है वास्तव मे तो वही सन्मार्ग है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! कुपथ किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"सुपथ के विरुद्ध जो है वही कुपथ है। जो मार्ग मुझ तक पहुँचा दे वह सुमार्ग है और जो गहन संसार की ओर ले जाय वही कुपथ या कुमार्ग है। अहंता और ममता का ही नाम संसार है। अहंता ममता से ही चित्त में विक्षेप होता है, अतः जिससे चित्त मे विक्षेप हो वही कुपथ है।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो ! स्वर्ग किसका नाम है ?"

भगवान् ने कहा—"लोक मे तो स्वर्ग नाम का लोक है वह तो प्रसिद्ध ही है जहाँ अमृत है,अप्सरायें है, नंदनवन हैं, देवलोक है विमान हैं तथा अन्यान्य स्वर्गीय पदार्थ हैं, किन्तु मेरे मत मे तो जहाँ भी जिस समय सत्वगुण का उदय हो जाय, वही स्वर्ग है।"

उद्धवजी ने पूछा—"फिर नरक किसका नाम है ?"

भगवान् ने कहा—"लोक मे तो रौरव, महारौरव, अन्धतामिस्र तथा अन्यान्य नरक प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु मेरे मत मे तो जहाँ भी जिस समय भी तमोगुण का प्राबल्य हो जाय वही नरक है।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो ! बन्धु किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"जो हमे अपने स्नेह सम्बन्ध से बाँध ले वही बन्धु है। सम्पूर्ण प्राणियों का एकमात्र सखा सुहृद् मैं ही हूँ। अतः गुरुरूप से मैं ही सब का बन्धु हूँ।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रभो ! घर किसे कहते हैं ?"

भगवान् ने कहा—"जहाँ पहुँच कर प्राणी सुखी हो जाय। और योनियों मे तो सब कार्य स्वभावानुसार करना पड़ता है। एक

मनुष्य योनि ही ऐसी है, कि जहाँ से मनुष्य मुक्त हो सकता है। अतः सच्चा घर मनुष्य शरीर ही है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! धनवान् किसे कहते हैं?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! लोक में तो लोग उसी को धनी कहते हैं, जिसके पास कुछ सुवर्ण चाँदी के ठीकरे हों। किन्तु मेरे मत में तो सच्चा धनी वही है जिसमें सद्गुण निवास करते हों। वास्तव में गुणवान् ही यथार्थ धनवान् है।"

उद्धवजी ने पूछा—"अच्छा प्रभो! निर्धन कौन है?"

भगवान ने कहा—"उद्धव! जिसके पास अमूल्य नर देह है, दश इन्द्रियाँ हैं मन है बुद्धि है ऐसा कोई भी निर्धन नहीं है, किन्तु जिसके पास सब कुछ है अटूट धन है, किन्तु सन्तोष नहीं है तो वह सब रहने पर भी निर्धन है। वास्तव में जो असन्तुष्ट है वही निर्धन है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् कृपण कौन?"

भगवान् ने कहा—"लोक में तो कृपण उसे कहते हैं, जो धन रहते हुए भी उसे व्यय नहीं करता। किन्तु मेरे मत मे तो कृपण वही है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है। अजितेन्द्रिय ही वास्तव में दीन है कृपण दरिद्री है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! ईश्वर किसे कहते हैं?"

भगवान् ने कहा—"जो स्वाधीन है, जो विषयों में अनासक्त है वही ईश्वर है। जो विषयों दास है, वह ईश्वर कैसे हो सकता है। नाम का ईश्वर भले ही हो?"

उद्धवजी ने पूछा—"अनीश्वर कौन है भगवन् !"

भगवान् ने कहा—"ईश्वर के विपरीत अनीश्वर है। अर्थात् जो पराधीन है तथा विषयों मे संलग्न है, विषयों के अधीन है। उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! अशम, अदम, अधैर्य इन सबकी भी व्या ख्या करें।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"अरे, भैया ! ऐसे कहाँ तक व्याख्या करते रहेंगे। जो शम से विपरीत है अर्थात् बुद्धि का मुझमें न लगना ही अशम है। ऐसे ही अदम अधैर्य सभी का अर्थ लगा लो। इस प्रकार मैंने तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया अब तुम और क्या पूछना चाहते हो ?"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् संक्षेप मे गुण और दोष की मुझे कोई मोटी सी परिभाषा बता दें, जिससे मैं समझ लिया करु कि यह गुण है यह दोष है ?"

हँसकर भगवान् बोले—"गुण दोषों का देखना ही सबसे बडा दोष है। दूसरे के गुण दोषों को न देखना यही सबसे बडा गुण है। अतः गुण दोष दर्शन की भावना को ही छोड देना चाहिये। ससार में सब गुण गुणो में वरत रहे हैं। क्या दोष क्या गुण। सब मेरी माया है, खेल है क्रीडा है, जो गुण दोष देखने के चक्कर में फँसेगा वही दुखी होगा। और जो गुण दोष से ऊपर उठ जायगा वही सुखी होगा।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! यह सुनकर उद्धवजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे गुण दोष दीखें ही नहीं यह कैसे

संभव हो सकता है, इसके विषय मे वे जो भगवान् से शंका करेंगे, और भगवान् जो उत्तर देंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

हौं ही गुरुनर बन्धु मनुज तनुधर अति मनहर।
गुणी धनी ही सत्य विषय निरलिप्तहि ईश्वर॥
विषयी ईश्वर नहीं तासु चित नहीं समाहित।
निरधन जो नहिं तुष्ट कृपन जो नहि इन्द्रियजित॥
सब प्रश्ननि उत्तर दयो, उद्धव! अब अति सार सुन।
गुन दोषनि को देखिबो, दोष, न देखन उभय गुन॥

गुण दोषों के सम्बन्ध में उद्धवजी की शङ्का

(१२९३)

गुण दोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः।
निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः॥*

(श्री भा० ११ स्क० २० अ० ५ श्लो०)

छप्पय

सुनिकें प्रभु के वचन प्रश्न कीया उद्धव पुनि।
'भगवन्! मन भ्रम भयो बात गुण दोषनि की सुनि॥
यह गुन है यह दोष सतत श्रुति वचन बतावें।
विधि निषेध के हेतु कर्म गुन दोष दिखावें॥
द्रव्य, देश, वय, काल अरु, स्वरग नरक उत्तम अधम।
वेद भेद प्रति पद कहैं, कैसे फिरि तजि देहिँ हम॥

वेदों मे बहुत से वाक्य परस्पर विरोधी से दिखायी पड़ते हैं। कहीं पर उसी बात को करने की आज्ञा दी है दूसरे स्थान पर उसी का निषेध किया है। जो अल्पश्रुत हैं। जिन्होंने विधिवत गुरुजनों की सेवा शुश्रुषा करके ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, वे ऐसे वचनों

*उद्धवजी शङ्का करते हुए भगवान् से कह रहे हैं—"हे प्रभो! यह गुण दोषमयी भेद दृष्टि तो आपकी आप रूप श्रुति से ही है स्वतः तो है नहीं। और फिर श्रुति से ही इसका अपवाद भी होता है। इन दोनों विरुद्ध बातों से मुझे भ्रम हो रहा है।"

को सुनकर भ्रममे पड जाते हैं, बहुतसे अज्ञ तो कहने भी लगते हैं, कि वेदमे तो बहुतसे परस्पर विरोधी वचन हैं।" वे अज्ञ यह नहीं समझते कि यह वचन किस प्रकरणमे किस उद्देश्यसे कैसी परिस्थिति के लिये कहा गया है और जहाँ पर इसका विरोधी वचन है, वह किस परिस्थितिके लिये है। इसका रहस्य गुरुमुखसे ही समझा जा सकता है। वे ही परस्परमे विरोधीसे दीखनेवाले वचनोंकी मीमांसा कर सकते हैं, वे ही उनका सच्चा समन्वय करनेमे समर्थ हैं। अतः ऐसी शङ्का मनमे उठे तो सच्चे हृदयसे बिना छल कपटके सद्गुरुके चरणोंमे जाकर उसे निवेदन करना चाहिये। वे शिष्यकी शङ्का का समुचित रीति से समाधान कर सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—" मुनियो! जब भगवान् ने यह कहा कि 'गुण दोषों का देखना ही दोष है और इन दोनों का न देखना ही गुण है' तो इसे सुनकर उद्धवजी के मन मे शङ्का हुई। उन्होंने कहा—"प्रभो! आपके वचनों में मुझे शङ्का तो न करनी चाहिये, किन्तु फिर भी मुझे शङ्का हो गयी है, आज्ञा हो तो पूछूं ?"

भगवान् ने कहा—"हाँ, अवश्य पूछो।"

उद्धवजी ने कहा—'वेद तो भगवन्! आपकी आज्ञा ही हैं। वेदों में, शास्त्रों में, पुराणों तथा स्मृतियों मे सर्वत्र विधि निषेधमय वाक्य मिलते हैं। यह कार्य करना चाहिये यह न करना चाहिये। इसके करने से पुण्य होगा, इसके करने से पाप होगा। यह अच्छा काम है यह बुरा काम है। जो भी प्राणी कर्म करता है, उसमें गुण है या दोष इसका विवेचन वेद शास्त्र ही करते हैं। यह कार्य है यह अकार्य है, इस विषय में शास्त्र ही प्रमाण हैं।"

भगवान् ने कहा—"हाँ, कर्तव्या कर्तव्य का निर्णय शास्त्र ही तो करते हैं। कोन धर्म है कोन अधर्म है इसका निर्णय मेरी वेद-वाणी के द्वारा ही होता है।"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ, तो भगवन्! मेरी शङ्का तो रह गयी। मैं कह रहा हूँ कि सबसे अधिक गुण और दोष तो ही देखता है। यह ब्राह्मण है, यह शूद्र है। इसने यह दोष कि इसे इसका यह दण्ड मिलना चाहिये। यदि शूद्र ने कि ब्राह्मणी से सन्तान उत्पन्न कर ली तो वह प्रतिलोमज वर्ण सं समस्त शुभ कर्मों से वहिष्कृत है। यदि उच्च जाति के पुरुष ने ह जाति की स्त्री से सन्तान उत्पन्न कर ली तो वह अनुलोमज सं है। यह यह कर्म कर सकता है, यह यह कर्म नहीं कर सक्त इसी प्रकार यह द्रव्य शुद्ध है यह अशुद्ध है। यह अमुक के लि ग्राह्य है अमुक के लिये त्याज्य है। अमुक देश शुद्ध है अमु देश अशुद्ध है। इन इन देशों मे यदि तीर्थ यात्रा के विना च जाय तो उसे अमुक अमुक प्रायश्चित्त करना चाहिये। अमुक अ स्था मे अमुक कार्य करना उपयुक्त है, अमुक मे अनुपयुक्त है अमुक काल में अमुक कार्य करना पाप है, वही कार्य दूसरे काल में करना पाप नहीं है। इस कर्म के करने से स्वर्ग की प्रा होती है, इस कार्य को करने से नरक मे जाना पडता है। इ सब भेदों को कौन बताता है ?"

भगवान् ने कहा—"वेद ही इन सब बातों को बताता है।"

अपनी बात पर बल देते हुए उद्धवजी ने कहा—"हाँ, यही तो मैं कह रहा हूँ, कि बिना गुण दोषों का विवेचन किये हुए वेद भी मनुष्यों का कल्याण नहीं कर सकता। उसे भी गुण दोषमयी भेद दृष्टि के ही द्वारा लोगों के कर्तव्यों का निर्णय करना होगा। साधारण लोग क्या समझ सक्ते हैं कौन साध्य है कौन साधन है। घट पट सम्मुख हो दृष्टि से देखने की वस्तु हो तो साधारण लोग बता सक्ते हैं, यह घडा कच्चा है, यह पक्का है। यह वस्त्र पीला है, यह लाल है यह शुभ्र है, किन्तु स्वर्ग अपवर्ग ये विषय तो अदृष्ट हैं, इनका निर्णय तो वेद से ही हो

सकता है। देवता पितर मनुष्य सभी वेदों को ही प्रमाण मानते हैं। जब सबके एकमात्र प्रमाण भूत वेदों में ही गुण दोषमयी भेद दृष्टि विद्यमान है, तो फिर हम साधारण लोग गुण दोषों को न देखें यह कैसे संभव हो सकता है। फिर वेद में ऐसे भी वचन मिलते हैं दूसरे के गुण दोषों को तुरन्त त्याग कर अमृतत्व लाभ करो।" एक ओर तो वेद स्वयं गुण दोषों को देखते हैं। वेदों की भित्ति ही विधि निषेध गुण दोषो के ऊपर अवस्थित है। वेदों में विधि निषेध, गुण दोष दर्शन को निकाल दो तो उसमें रह ही क्या जायगा। दूसरी ओर स्वयं वेद ही कहता है गुण दोषों को देखो ही नहीं। इन विरोधी वचनो से मुझे भ्रम हो रहा है, कृपा करके मेरे इस भ्रम को दूर कीजिये मेरी इस शङ्का का समाधान कीजिये।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! वेद किसी एक के लिये तो है ही नहीं। वह तो सभी प्रकार के लोगों के लिये है। उसमें सात्विक लोगों के लिये भी उपाय है, राजस प्रकृति के लोगो के लिये और तामस प्रकृति के लोगो के लिये भी हैं। गुणा-तीत पुरुषों के लिये भी उपाय है। जैसे पंसारी की दुकान है उसमें सभी वस्तुएँ हैं। संखिया भी है जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह उससे प्राप्त करता है। अधिकारी भेद से उसमें तो गुण दोषों के विवेचन की सभी बातें हैं। जिन्हें परम पद की प्राप्ति करनी हो उन्हे अपने अनुकूल निः-श्रेयस् के उपाय को अवलम्ब कर लेना चाहिये। आयुर्वेद मे एक ही रोग की भिन्न भिन्न प्रकृति होने से औषधियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। मान लो तीन आदमियों को एक सा ही ज्वर है, किन्तु उन तीनों को प्रकृति भिन्न भिन्न हैं। किसी की वात प्रकृति है, किसी की पित्त प्रकृति है और किसी की कफ प्रकृति

है तो तीनों का निदान पृथक् पृथक् होगा। परम पद प्राप्ति भी वेदों मे पृथक् पृथक् मार्ग बताये हैं।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! वेदों मे परमपद के मुख्यतया कै उपाय हैं?"

भगवान् ने कहा—"मुख्यतया तीन उपाय वेदों में कहे हैं। एक ज्ञान योग दूसरा भक्ति योग और तीसरा कर्म योग। यह विधि निपेध का विवेचन कर्म मार्ग मे ही है। जो ज्ञान मार्ग आरूढ हो गये हैं या जिन्हें भक्ति की परिपक्वावस्था प्राप्त चुकी है उनके लिये विधि निपेध, गुण दोष अथवा हेय उपादे कुछ रह ही नहीं जाता।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! मुझे ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के सम्बन्ध मे विस्तार के साथ बतावें। इन तीनों मार्ग को भली भाँति समझावें।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है सुनो, मैं इन तीनों का अत्यत सक्षेप में तुम्हें परिचय कराता हूँ।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जिस प्रकार भगवान् तीनों मार्गों का निवेचन करेंगे उसे मैं आपसे कहता हू।"

छप्पय

पुनि श्रुति ही यों कहै, दोप गुन नहीं निहारो।
त्यागि दोप गुन भक्ति करो या मक्त विचारो॥
लखि विरोध भ्रम भयो बुद्धि मेरी चकराई।
मम भ्रम मेटो नाथ भक्त वत्सल यदुराई॥
तब बोले भगवान् सुनु, उद्धव तू अति तत्त्वित।
तीन योग मैंने कहे, पुरुपनि के कल्यान हित॥

———

योगत्रय विवेचन

(१२३४)

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥
(श्रीभा० ११ स्क० २० अ० ६ श्लो०)

छप्पय

ज्ञान कर्म अरु भक्ति योग ये तीनि पुरातन ।
जो विरक्त निष्काम ज्ञान तिनि हेतु सनातन ॥
अधिकारी ते कर्मयोग के, जो सकाम जन ।
नहिँ विरक्त अति रक्त न तिनिको भक्ति परमधन ॥
जब तक विषय विराग नहिँ, मम गुन करमनि श्रवन रुचि ।
तब तक तजि फल कर्म करि, हावै अन्तः करन शुचि ॥

वही सुपथ है जो साधक को प्रभु के पाद पद्मा तक पहुँचावे। सत्ययुग से लेकर अब तक तीन मार्ग चले आये हैं। उन्हें कर्म उपासना और ज्ञान मार्ग कहते हैं। जो लोग एकमात्र ज्ञान को ही मुक्ति का कारण मानते हैं वे कर्म और उपासना को पृथक मार्ग न मानकर इन्हें ज्ञान का कारण मानते हैं। वे इन तीनों मार्गों की सगति या लगाते हैं, कि शुभ कर्मों द्वारा

*श्री भगवान् उद्धवजी को उत्तर देते हुए कह रहे हैं—"उद्धव! मैंने मनुष्यों के कल्याण निमित्त तीन योग कहे हैं। वे ज्ञानयोग कर्मयोग और भक्तियोग ये ही हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

अन्तःकरण की शुद्धि होती है। शुद्ध अन्तःकरण में भगवान् की सगुण उपासना की योग्यता आ जाती है। उपासना करते करते जब वह अहंग्रह उपासना के रूप में परिणित हो जाता है, तो अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान होता है। उसी ज्ञान के द्वारा मुक्ति होती है। उनका मत है कर्म और उपासना स्वतंत्र रीति से मुक्ति के कारण नहीं हैं। परम्परया कारण हैं। शुभ कर्मों से अन्तःकरण की शुद्धि उपासना से ज्ञान का अधिकार और ज्ञान से मुक्ति। उनका कहना है, ज्ञान के अतिरिक्त और किसी साधन से मुक्ति हो ही नहीं सकती।

वैदिक उपासना का नाम उपासना है, वही जब वेद, तन्त्र तथा अन्य पाँच रात्रादि शास्त्रों द्वारा उपासना की जाती है तो उसी का नाम भक्ति है भक्ति शास्त्र वाले कहते हैं, एकमात्र भक्ति के द्वारा ही परमपद की प्राप्ति हो सकती है उसके लिये ज्ञान की अपेक्षा नहीं। ज्ञान भक्ति का साधन हो सकता है। किन्तु भक्ति तो मुक्ति से भी बढ़कर है, जो मुक्ति ज्ञान का कारण है।

मीमांसक कहते हैं। वेद एकमात्र कर्म का ही प्रतिपादन करता है, वेद में केवल कर्म करने का ही आग्रह है, कुछ उपासना और ज्ञानपरक वचन भी मिलते हैं, वे केवल प्रशंसापरक हैं। उनका मत है, जब तक जीओ, तब तक वेदोक्त शुभ कर्मों को करते रहो। उन शुभ कर्मों के फल से स्वर्गादि लोकों में जायँगे। वहाँ अमृत पीवेंगे विहार करेंगे यदि पुण्य कर्म कभी क्षीण भी हो गये तो हम यहीं शुचि श्रीमानों के घरों में जन्म लेंगे फिर शुभ कर्म करेंगे फिर वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करेंगे फिर अक्षय पुण्य लोकों में जायँगे, उनके मत में स्वर्गादि के सुख ही मुक्ति है। इन सुखों के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं, ज्ञान मार्ग भक्तिमार्ग और कर्म मार्ग ये तीन मार्ग सनातन हैं। अब विचार यह करना है, कि ये तीनों ही लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ हैं या कोई इनमें से बीच में ही छोड़ देने वाला है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! योगत्रय का वर्णन करते हुए भगवान् उद्धवजी से कह रहे हैं—'उद्धव! मनुष्यों के कल्याण के निमित्त मैंने ज्ञानयोग भक्तियोग और कर्मयोग ये ही तीन मार्ग बताये हैं। इन तीनों के अतिरिक्त चौथा कोई अन्य मार्ग है ही नहीं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! आपने तीन योग क्यों बताये। एक ही योग बताते।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! सबकी प्रकृति भिन्न भिन्न है। अधिकारी भेद से मैंने ये तीन योग बताये। जो जिस योग का अधिकारी होगा, वह उसी योग को ग्रहण कर लेगा।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! प्रथम मुझे आप इन तीनों योगों के अधिकारियों के ही सम्बन्ध में बतावें। अच्छा ज्ञान-योग का कौन अधिकारी है?"

भगवान् ने कहा—"जिन्हें आरम्भ से ही यह संसार दुःख-मय प्रतीत होता है, जो अनुभव करते हैं, कि जितने कर्मों के आरम्भ किये जाते हैं, वे सभी दोष पूर्ण किये जाते हैं। इसलिये उनकी किसी भी कर्म में प्रवृत्त होने की स्वाभाविक रुचि ही नहीं होती। जो अच्छे बुरे सभी कर्मों से विरक्त होकर उन्हें त्याग देना चाहते हैं। हुए कर्मों से अनासक्त रहनेवाले ज्ञानयोग के अधिकारी होते है।"

उद्धवजी ने कहा—"अच्छा, भगवन्! कर्मयोग के अधिकारी कौन है?"

भगवान् ने कहा—'जिनकी कर्मों में स्वाभाविक रुचि हो।

जिन्हें कर्म करते रहने मे आनन्दानुभव होता हो। जिनको कर्मों के प्रति अनुराग है ऐसे सकामी पुरुष कर्मयोग के अधिकारी हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"फिर भक्तियोग के अधिकारी कौन रहे ?"

भगवान् ने कहा—"भक्तिमार्ग मध्यम मार्ग है। मध्यम प्रवृत्ति के लोग भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। जिनको कर्मों से न तो अत्यंत विरक्ति ही है और न कर्मों के प्रति अत्यंत आसक्ति ही है। कर्म सम्मुख आ जायँ, तो उन्हें देखकर भयभीत नहीं होते, न आवे तो उनके लिये अत्यंत प्रयत्नशील भी नहीं होते। सौभाग्यवश जिनको मेरी भागवती कथाओं के श्रवण में स्वाभाविकी रुचि है। मेरी कथा सुनते ही जो प्रफुल्लित हो जाते हैं, ऐसे लोग भक्तियोग के अधिकारी हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् आपके कथन से ऐसा प्रतीत हुआ, कि कर्म करना कोई आवश्यक नहीं है। यदि कर्म अनावश्यक ही हैं तो इन्हें छोड़ ही क्यों न देना चाहिये।"

भगवान् ने शीघ्रता के साथ कहा—"न, उद्धव ! जब तक कर्मों से पूर्ण वैराग्य न हो जाय, अथवा मेरी कथाओं के कथन श्रवण में ही पूरी आसक्ति न हो जाय, तब तक कर्मों को करते ही रहना चाहिये। न तो ज्ञान ही हुआ न मेरे नाम गुण श्रवणादि में भक्ति ही हुई। ऐसी दशा में जो कर्मों को छोड़ देगा, वह अकर्मण्य या आलसी हो जायगा। इतो भ्रष्टस्ततोभ्रष्टः बन जायगा। इसलिये जब तक कर्म त्याग की योग्यता न हो तब तक कर्मों को करते रहना चाहिये।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! कर्म कै प्रकार के हैं।"

भगवान् ने कहा—"कर्म चार प्रकार के होते हैं, नित्यकर्म जैसे सन्ध्यावन्दन श्राद्धतर्पण आदि, नैमित्तिककर्म जैसे श्राद्ध,

ग्रहण स्नान आदि जो किसी निमित्त से किये जाते हैं। काम्य-कर्म जैसे स्वर्ग की कामना से अश्वमेध करना। पुत्रकी कामना से पुत्रेष्टियज्ञ करना। किसी भी कामना की पूर्ति के लिये जो कर्म किये जाते हैं, वे काम्यकर्म कहाते हैं। निषिद्धकर्म जैसे पर स्त्री गमन, सुरापानादि।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! इन कर्मों का फल क्या है?"

भगवान् ने कहा—"नित्यकर्म तो कर्तव्य बुद्धि से किये जाते हैं, इनके न करने से पाप लगता है, करने से कोई विशेष पुण्य नहीं। नैमित्तिककर्म करने से देवता पितर आदि सन्तुष्ट होते हैं। काम्यकर्म करने से कामनायें पूर्ण होती हैं, स्वर्गादि लोको की प्राप्ति होती है। निषिद्धकर्म करने से नरकादि लोकों की प्राप्ति होती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"तब तो ये कर्म बन्धन के ही कारण हुए। जैसा नरक बन्धन है वैसा ही स्वर्ग बन्धन है। एक मूँज की कड़ी रस्सी का बन्धन है, दूसरा रेशमी मृदुल रस्सी का बन्धन है। तब तो कर्म करना सर्वथा दोषयुक्त ही सिद्ध हुआ।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! तुम्हारा कथन यथार्थ है। यदि कर्म सकाम बुद्धि से किये जायँगे, तो वे अवश्य ही बन्धन का कारण होंगे, किन्तु कर्म निष्काम भाव से किये जायँ और वे निषिद्ध तथा काम्यकर्म न हों। स्वधर्म का पालन करते हुए कर्मों के फलों की आशा न रखकर कर्तव्य बुद्धि से किये जायँ, तो न उनसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी न नरक की।"

उद्धवजी ने पूछा—"तब भगवन्! उन कर्मों का फल क्या होगा, कोई भी कर्म निष्फल तो हो नहीं सकता।"

भगवान् ने कहा—"देखो, ब्रह्मज्ञान या भक्तितत्व है, वह या तो ज्ञान मार्ग से प्राप्त होता है या भक्ति मार्ग से। कर्म मार्ग को अदृढ़ नौका बताया है। कर्म स्वतः परतत्व तक पहुँचाने मे अस-

जिन्हें कर्म करते रहने में आनन्दानुभव होता हो। जिनको कर्मों के प्रति अनुराग है ऐसे सकामी पुरुष कर्मयोग के अधिकारी हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"फिर भक्तियोग के अधिकारी कौन रहे ?"

भगवान् ने कहा—"भक्तिमार्ग मध्यम मार्ग है। मध्यम प्रवृत्ति के लोग भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। जिनको कर्मों से न तो अत्यंत विरक्ति ही है और न कर्मों के प्रति अत्यंत आसक्ति ही है। कर्म सम्मुख आ जायँ, तो उन्हें देखकर भयभीत नहीं होते, न आवें तो उनके लिये अत्यंत प्रयत्नशील भी नहीं होते। सौभाग्यवश जिनको मेरी भागवती कथाओं के श्रवण में स्वाभाविकी रुचि है। मेरी कथा सुनते ही जो प्रफुल्लित हो जाते हैं, ऐसे लोग भक्तियोग के अधिकारी हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् आपके कथन से ऐसा प्रतीत हुआ, कि कर्म करना कोई आवश्यक नहीं है। यदि कर्म अनावश्यक ही हैं तो इन्हें छोड़ ही क्यों न देना चाहिये।"

भगवान् ने शीघ्रता के साथ कहा—"न, उद्धव ! जब तक कर्मों से पूर्ण वैराग्य न हो जाय, अथवा मेरी कथाओं के कथन श्रवण में ही पूरी आसक्ति न हो जाय, तब तक कर्मों को करते ही रहना चाहिये। न तो ज्ञान ही हुआ न मेरे नाम गुण श्रवणादि में भक्ति ही हुई। ऐसी दशा में जो कर्मों को छोड़ देगा, वह अकर्मण्य या आलसी हो जायगा। इतो भ्रष्टस्ततोभ्रष्टः बन जायगा। इसलिये जब तक कर्म त्याग की योग्यता न हो तब तक कर्मों को करते रहना चाहिये।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! कर्म के प्रकार के हैं।"

भगवान् ने कहा—"कर्म चार प्रकार के होते हैं, नित्यकर्म जैसे सन्ध्यावन्दन श्राद्धतर्पण आदि, नैमित्तिककर्म जैसे श्राद्ध,

महण स्नान आदि जो किसी निमित्त से किये जाते हैं। काम्य-कर्म जैसे स्वर्ग की कामना से अश्वमेध करना। पुत्रकी कामना से पुत्रेष्टियज्ञ करना। किसी भी कामना की पूर्ति के लिये जो कर्म किये जाते हैं, वे काम्यकर्म कहाते हैं। निषिद्धकर्म जैसे पर स्त्री गमन, सुरापानादि।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! इन कर्मों का फल क्या है ?"

भगवान् ने कहा—"नित्यकर्म तो कर्तव्य बुद्धि से किये जाते हैं, इनके न करने से पाप लगता है, करने से कोई विशेष पुण्य नहीं। नैमित्तिककर्म करने से देवता पितर आदि सन्तुष्ट होते हैं। काम्यकर्म करने से कामनायें पूर्ण होती हैं, स्वर्गादि लोको की प्राप्ति होती है। निषिद्धकर्म करने से नरकादि लोकों की प्राप्ति होती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"तब तो ये कर्म बन्धन के ही कारण हुए। जैसा नरक बन्धन है वैसा ही स्वर्ग बन्धन है। एक मूँज की कडी रस्सी का बन्धन है, दूसरा रेशमी मृदुल रस्सी का बन्धन है। तब तो कर्म करना सवथा दोषयुक्त ही सिद्ध हुआ।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! तुम्हारा कथन यथार्थ है। यदि कर्म सकाम बुद्धि से किये जायँगे, तो वे अवश्य ही बन्धन का कारण होंगे, किन्तु कर्म निष्काम भाव से किये जायँ और वे निषिद्ध तथा काम्यकर्म न हों। स्वधर्म का पालन करते हुए कर्मों के फलों की आशा न रखकर कर्तव्य बुद्धि से किये जायँ, तो न उनसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी न नरक की।"

उद्धवजी ने पूछा—"तब भगवन्! उन कर्मों का फल क्या होगा, कोई भी कर्म निष्फल तो हो नहीं सकता।"

भगवान् ने कहा—"देखो, ब्रह्मज्ञान या भक्तितत्व है, वह या तो ज्ञान मार्ग से प्राप्त होता है या भक्ति मार्ग से। कर्म मार्ग को अदृढ़ नौका बताया है। कर्म स्वतः परतत्व तक पहुँचाने में अस-

मर्थ है। जो निष्काम भाव से स्वधर्म में तत्पर रहेगा, और अपने यज्ञादि कर्मों का कुछ भी लौकिक फल न चाहेगा, उसके उस निष्काम कर्म के प्रभाव से समस्त अशुभ संस्कार क्षीण हो जायँगे, वह निष्पाप तथा पवित्र बन जायगा उसका अन्त:करण इसी लोक में रहकर विशुद्ध तथा निर्मल हो जायगा यदि वह मस्तिष्क प्रधान हुआ तथा उसके पूर्व संस्कार विचार प्रधान हुए तो, उसे निष्काम कर्मयोग के प्रभाव से विशुद्ध आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी, जिससे वह मोक्ष का अधिकारी हो जायगा। यदि वह हृदय प्रधान हुआ तो उसकी अत्यधिक रुचि मेरी भागवती कथाओं के श्रवण में होगी और उसे मेरी पराभक्ति की प्राप्ति हो जायगी। अतः मेरी प्राप्ति के मुख्यतया दो ही साधन हैं। ज्ञान-मार्ग और भक्तिमार्ग। ये दोनों साधन मनुष्य शरीर से ही प्राप्त किये जा सकते हैं, अतः मनुष्य का एक नाम साधक भी है।"

उद्धवजी ने पूछा—"क्या भगवन्! अन्य शरीरों से ज्ञान भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ?"

भगवान् ने कहा—"अन्य शरीरों से ज्ञानभक्ति की प्राप्ति कैसे होगी, अन्य सब योनि तो भोग योनि हैं। नरकलोक के नारकीय जीव अपने पापों का फल भोग रहे हैं वे नया कार्य कर ही नहीं सकते। इसी प्रकार स्वर्गीय देवगण अपने पुण्यों का भोग कर रहे हैं। पुण्य क्षीण होने पर मर्त्यलोक में आ जायँगे, वे भी नया साधन नहीं कर सकते। कीट पतंग, पशु पक्षी, वृक्ष लता तथा अन्यान्य योनि वाले सब स्वतः साधन करने में असमर्थ हैं। एक मनुष्य देह ही ऐसी है, जिससे साधन किये जा सकते हैं। अशुभ कर्म करके नरक जा सकते हैं, शुभ कर्म करके स्वर्ग जा सकते हैं और ज्ञान के द्वारा मोक्ष तथा भक्ति के द्वारा मुझे प्राप्त कर सकते हैं।"

उद्धवजी ने आश्चर्य के साथ कहा—"तब तो भगवन्! यह

मनुष्य देह बड़ी अमूल्य है। हम तो इसे साधारण ही योनि समझते थे।"

भगवान ने कहा—" उद्धव ! किसी को सहसा कोई अमूल्य मणि मिल जाती है, तो उसकी दृष्टि में वह साधारण सी वस्तु हो जाती है, जब कोई पारखी उसका मूल्य समझकर उसे बताता है, तब उसे आश्चर्य होता है, ओहो ! यह इतनी बहुमूल्य वस्तु है। संसारी मनुष्यों को मनुष्य शरीर सुगमता से प्राप्त है, वह उसका आदर नहीं करता तनिक से संसारी प्रलोभन के पीछे मोक्ष मार्ग से च्युत हो जाता है। उद्धव ! स्वर्गीय देवता भी यही इच्छा करते रहते हैं, कब हमें मनुष्य योनि प्राप्त हो, कब हम मोक्ष के लिये उपाय करें नरकलोक वाले जीव भी तड़फा करते हैं वे भी बार बार कहते हैं—"हाय ! हमने कैसे कैसे पाप किये। अब किसी प्रकार इन नरकों से निकलकर मनुष्य योनि प्राप्त कर लें, तो फिर ऐसी भूल कभी भी न करेंगे। मनुष्य शरीर पाकर ज्ञान या भक्ति का अवलम्ब लेंगे। स्वर्ग और नरक दोनों में ही साधन नहीं हो सकता दोनों ही भोगलोक हैं।

उद्धवजी ने कहा—"तब तो प्रभो ! बारम्बार मनुष्य योनि मिले इसी बात की इच्छा करनी चाहिये।

हँसकर भगवान् बोले—"अरे, इच्छा ही करनी हो, तो योनियों में पड़ने की इच्छा क्यों करें। हम किसी भी योनि में न जायँ। न स्वर्ग जायँ न नरक में जायँ तथा अब आगे से हमें मनुष्य योनि भी प्राप्त न हो। इसी शरीर से हम जन्ममरण तथा आवागमन के चक्कर से छूट जायँ, इसी के लिये सतत प्रयत्नशील होना चाहिये।"

उद्धवजी ने कहा—"महाराज जिस मनुष्य शरीर से भगवान् की भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त होती है, उस इतने उपकारी शरीर के प्रति आसक्ति होना स्वाभाविक ही है।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"कार्य होने पर साधन की ओर कोई ध्यान नहीं देता। हमें पार जाना है। पार नौका से होना होता है। जब तक हम पार नहीं जाते नौका की ओर टकटकी लगाये देखते रहते हैं। जहाँ पार हो गये कि फिर नौका की ओर ध्यान नहीं देते। हमें चना भुजाना है। भड़भूजे की दुकान पर भुनाने ले गये। वहाँ भुनाने वालों की भीड़ है। जब तक हमारा चबेना नहीं भुनता हम गरम बालू की ओर देखते रहते हैं। जहाँ हमारा चबैना भुन गया फिर हम उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। हमें अपने घर किसी गाड़ी के द्वारा पहुँचना है। जब तक गाड़ी नहीं मिलती उसी की ओर देखते रहते हैं गाड़ी आयी हम उसमें बैठ गये गन्तव्य स्थान पर उतर गये हम गाड़ी का ध्यान भी नहीं रखते। इसी प्रकार यह शरीर गन्तव्य स्थान तक हमें पहुँचाने वाला है। यदि साधक की देह में अत्यधिक आस्था हो जाय, तो फिर वह पारमार्थिक साधनों में प्रमाद करने लगता है। सब समय शरीर के ही सजाने बजाने तथा स्वच्छ करने में लगा रहता है। अतः शरीर में भी आसक्ति न रखे।

उद्धवजी ने कहा—'तो भगवन्! इस शरीर की उपेक्षा कर दे ?"

भगवान् ने कहा—"नहीं सर्वथा उपेक्षा भी न करे। उपेक्षा करने से यह शरीर अस्वस्थ हो जायगा। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के साधन इस शरीर से ही तो किये जा सकते हैं। साधन स्वस्थ शरीर से होते हैं। आरोग्य ही पुरुषार्थ चतुष्टय का मूल कारण है। प्रतिक्षण इस बात का ध्यान रखे, कि यह शरीर नश्वर है नाशवान् है। जब तक इसका नाश न हो तभी तक इससे परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कर ले। देहपात के पूर्व ही हमें अपुनर्भव की उपलब्धि हो जाय, हमारा आवागमन सदा के लिये छूट जाय।" ऐसा साधक को सदा विचार रखना चाहिये।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! देह तो घर है, इसमें रहनेवाले देही को देहपात होते समय क्लेश तो होगा ही।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भैया जब यह निश्चय हो जाय, कि यह शरीर नाशवान् है और आत्मा अविनाशी है, तो फिर कभी भी देह का पात हो जाय, तुरन्त देही उससे पृथक् होकर एक ओर खड़ा हो जाता है।"

अब जैसे कोई वृक्ष है उसपर किसी पक्षी ने घोंसला बना लिया है, तो वह घोंसला ही पक्षी नहीं है, वह तो पक्षी के रहने का स्थान है। जो पक्षी घोंसला को ही अपना रूप समझता है वह वृक्ष के नष्ट होने पर भी उसके जलने पर भी घोंसले को नहीं छोड़ता तो नष्ट हो जाता है। जो पक्षी समझता है, कि मैं पृथक् हूँ मेरे रहने का घोंसला पृथक् है। वह जब किसी को वृक्ष की डाल काटते देखता है, तो वृक्ष के गिरने के पूर्व ही घोंसला छोड़कर अलग हो जाता है। इसी प्रकार देही का यह देह घोंसला है। यम के दूत उसे काटने लगते हैं, तो यह जीव रूप पक्षी आनन्द से उड़कर चला जाता है, उसे तनिक भी आसक्ति नहीं होती, जिसको मरते समय देह की आसक्ति होती है उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है बार बार मरना पड़ता है।

कुछ मनुष्य एक अन्धे कूए में घास को पकड़े हुए लटक रहे हैं। उस कूए की दूसरी ओर एक सुन्दर नसैनी बनी है। वह तभी पकडी जा सकती है जब घास से छूटे। उस घास की जडों को दो चूहे काट रहे हैं। एक सफेद चूहा है एक उसकी काली बहू है। दोनों ही अपने तीक्ष्ण दाँतों से निरन्तर घास की जड़ो को कतरने में लगे हैं। जो केवल कटती हुई घासों की जडों को ही देखते हैं वे रोते हैं, कि हम अब निरालम्ब हो जायँगे अन्धे कूए में गिर जायँगे अतः वे रोते हैं बार बार चेष्टा करते हैं यह घास हाथ से न छूटे। किन्तु जो समझता है, कि एक दिन

इस घास की जड़ें अवश्य ही कट जायँगी। नीचे हमको सीढ़ी मिलेगी जिससे चढ़कर हम सदा के लिये इस अंधे कूप से बाहर निकल जायँगे, वह घास की जड़ों को कटते देखकर हँसता है और उनकी रक्षा के लिये किसी प्रकार की चेष्टा भी नहीं करता। शान्त होकर और उन जड़ों के कटने की प्रतीक्षा करता रहता है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! मैं इस कथा का अभिप्राय अभी नहीं समझा।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव यह संसार ही अन्धा कूआ है। ज्ञानभक्ति रूप ही इसमें से निकलने की नसैनी लगी है। मनुष्य देह ही घास है। इसके सहारे ही जीव इस संसार रूप अंधे कूए मे लटक रहे हैं। दिन ही सफेद चूहा है। रात्रि ही उसकी काली वहू है। दिन रात्रि मिलकर जीवों की जड़ रूप आयु को काट रहे हैं। अज्ञानी जीव तो शरीर के नाश के भय से भयभीत रहते हैं शरीर बना रहे इसके लिये भाँति भाँति की चेष्टा करते हैं। जिन्हें सीढ़ी का ज्ञान है वे शरीर के नष्ट होने से दुखी नहीं होते। वे अनासक्त भाव से चेष्टा हीन होकर शान्त बने रहते हैं। देह छूट जाने पर ज्ञान भक्ति द्वारा आवागमन से छूटकर परमपद के अधिकारी होते हैं। कहो कैसी कहानी रही ?"

उद्धवजी ने कहा—"महाराज! बड़ी सुन्दर रही।"

भगवान ने कहा—"कहो तो एक ऐसी ही और सुनाऊँ ?"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ, महाराज! अवश्य अवश्य सुनाइये ?"

भगवान् ने कहा—"देखो, एक अगाध सागर है। उसमें बड़ी बड़ी हिलौरें उठ रही हैं। उसके बिना पार जाये सुख नहीं। शान्ति नहीं। उस समुद्र को पार करने की इच्छा सभी रखते हैं, किन्तु सब किनारे तक आ नहीं सकते। कुछ लोग साहस करके

किनारे पर आ गये, उसी समय उन्हें एक सुदृढ नौका दिखायी दी। उसमें बड़ा सुयोग्य एक मल्लाह भी बैठा है। संयोग की बात कि उस समय वायु भी अनुकूल चल रही है। इसमें बैठते ही वायु स्वतः नौका को उस पार उड़ा ले जायगी। मल्लाह कहता है-आओ तुम्हें पार कर दे। किन्तु बहुत से लोग उस नौका को भी पाकर पार जाना नहीं चाहते, उन्हें क्या कहेगे ?"

उद्धवजी ने कहा—"उन्हे महाराज, महामूर्ख, वज्रमूर्ख और अभागी कहेगे।"

भगवान् ने कहा—"इसी प्रकार ये साधनहीन पुरुष अभागी हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! मैं इस कहानी का अर्थ नहीं समझा।"

भगवान् ने कहा—"यह संसार ही उत्ताल तरङ्गों वाला सागर है। मनुष्य शरीर ही इससे पार होने की सुदृढ़ नौका है। श्री गुरुदेव ही इसके सुयोग्य कर्णधार हैं। मेरी कृपा अनुकम्पा ही अनुकूल वायु है। ऐसा सुयोग पाकर भी जो पुरुष इस संसार सागर से पार नहीं होता वह आत्मघाती है। इसलिये उद्धव! इस मनुष्य शरीर को पाकर योगाभ्यास करना चाहिये मुक्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। विषय भोगो मे ही समय को व्यर्थ न बिताना चाहिये।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! योगाभ्यास कैसे करे, इस कभी स्थिर न होनेवाले चंचल मन को वश में कैसे करे। कृपा करके मन को वश में करने का उपाय मुझे बतावें।"

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—"उद्धव! यह मन ही तो हत्या की जड है। यही दुष्ट तो सब गुड गोबर एक करता रहता है। यही तो शान्त नहीं होता। यदि मन वश में हो जाय, तब तो सभी काम बन जाय, फिर जन्ममरण के चक्कर में बार

बार क्यों फँसना पड़े। इसका वश में होना कठिन है, किन्तु असम्भव नहीं। यह भी वश में किया जा सकता है अच्छी बात है, अब मैं तुम्हें मन को वश मे करने का ही सहज उपाय बताऊँगा।"

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"ऋषियो! भगवान् ने जैसे मन को वश में करने का उपाय बताया है उसे मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

भक्ति ज्ञान की प्राप्ति मनुज तनु तें ही होवै।
पाइ मनुज तनु विषय भोग महँ ताकूँ खोवै॥
सो अति मूरख अधम अमृत तजि विषकूँ पीवै।
मृतक सरिस सो अज्ञ देखिबे कूँ ही जीवै॥
नौका नर तनु अति सुदृढ, करनधार गुरुके चरन।
होहिँ अज्ञ भवपार नहिँ, मम प्रेरित पावन पवन॥

मन के निरोध के उपाय

(१२९५)

यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः।
अभ्यासेनात्मना योगी धारयेदचलं मनः॥
(श्री भा० ११ स्क० २० अ० १८ श्लो०)

छप्पय

ह्वै विषय विराग तबहि इन्द्रिय सयम करि।
चितकूँ करि थिर चचलता सब मन की परिहरि॥
चंचल हय के सरिस चित्तकूँ सीख सिखावे।
हौलें करि अनुराध योग महँ नित्य लगावे॥
साख्य योग तैं उदय लय, कौ मन तैं चिन्तन करै।
यों अनात्म महँ आतमधी की जडता कूँ परि हरै॥

जहाँ भी मन के निरोध का प्रश्न उठेगा वहीं अभ्यास और वैराग्य ये ही दो उपाय बताये जा रगे। अभ्यास और वैराग्य के बिना चित्त ससार से हटता नहीं। जब चित्त इस नश्वर अनित्य

*श्रीभगवान् उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव! जिस समय मन कर्मारम्भों से उदासीन तथा विरक्त हो जाय, उस समय योगी इन्द्रियों का यम करके आत्मचिन्तन के अभ्यास द्वारा अपने मन को स्थिर करे।"

संसार में ही लगा रहेगा, तब सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा का अनुभव कैसे कर सकेगा। हाँ भाग्य से गुरु चरणों की कृपा से किसी प्रकार भागवती कथाओं के श्रवण मे मन लग जाय कथाओं को सुनते सुनते प्रभु पादपद्मा मे भक्ति हो जाय, तो फि उसके लिये ज्ञान वैराग्य किसी की भी आवश्यकता नहीं र जाती। वह तो भक्ति महारानी का प्रसाद पाते ही कृतार्थ हो ज है। ज्ञान से तो मोक्ष की प्राप्ति होती है, किन्तु भगवत्भक्त त मोक्ष को भी ठुकरा देता है, अतः चाहे ज्ञान में या भक्ति में क भी एक निष्ठा हो जाय फिर उसका कल्याण ही कल्याण है।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"मुनियो! उद्धवज ने जब भगवान् से मन को वश में करने का उपाय पूछा, त भगवान् उन्हें समझाते हुए कह रहे हैं—"उद्धव! जब तक कर्म में अत्यंत आसक्ति है तब तक बन्धन है। जब मन से कर्मों के प्रति अनासक्ति हो जाय, ये विषय भोग धन वैभव फीके फी से प्रतीत होने लगें, तब समझना चाहिये कि अब कुछ कुछ सत का उदय हुआ है। अब साधन की योग्यता का सूत्रपात हुआ है। तब सब से पहिला काम यह है, कि पहिले इन्द्रियों का संयम करे। जो लोग साधन करना नहीं चाहते हैं, वे कह देते हैं, किसी काम को मन चल रहा है, केवल इन्द्रियों को रोकने से क्या होगा।" यह उनका कहना मिथ्या है। बिना मन की दृढ़ता के इन्द्रियाँ रुक ही नहीं सकती। जैसे हमारा मन किसी सुन्दर स्वादिष्ट वस्तु को खाने के लिए चल रहा है जीभ लपलपा रही है, पानी बहा रही है किन्तु मन कितना भी चले, तुम उसे खाओ मत। यह साधन की प्रथम सीढ़ी है। इन्द्रियों को विषय से हठ पूर्वक रोकना। जो इन्द्रिय जिस विषय की इच्छा करे उसे वह विषय देना ही नहीं। इस प्रकार कठोरता से इस नियम का पालन करोगे, तो शनैः शनैः फिर चित्त की वृत्ति शान्त होने लगेगी।

जलती हुई अग्नि में यदि आहुति डालते रहोगे, तो वह बढ़ती जायगी। यदि आपति ही न डालोगे तो आहार के अभाव मे शनैः शनैः शान्त हो जायगी। अतः विषयों से विरक्ति होने पर प्रथम काम यही है, कि इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाना।

उद्धवजीने पूछा—"भगवन् इन्द्रियों का संयम करके फिर क्या करे ?"

भगवान् ने कहा—"फिर आत्मचिन्तन के द्वारा अभ्यास द्वारा अपने इधर उधर भटकने वाले चंचल चित्त को स्थिर करे।"

उद्धवजी ने कहा—"महाराज, हम तो जब चित्त को स्थिर करने बैठते हैं तो वह और अधिक चंचल हो जाता है। वैसे तो साधारणतया चित्त अच्छा रहता है जहाँ माला लेकर बैठे तहाँ यहवड़ी लम्बी छलांगें भरने लगता है। संसार भर की बात ध्यान पूजन में बैठते ही स्मरण होने लगते हैं। सब से अधिक चित्त चंचल पूजा के ही समय होा है।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"न, भैया ! यह बात नहीं है। साधारण अवस्था में तो तुम चित्त के ऊपर ध्यान ही नहीं देते, उसे खुला छोड़ देते हो। इच्छानुसार तो सोचता है। ध्यान के समय तुम उसे बाँधना चाहते हो, तब वह भड़कता है। नये घोड़े को साधारणतया छोड दो इच्छानुसार चरता रहेगा, जहाँ उसके लगाम डाल दी वहाँ भड़कने लगेगा। इसी प्रकार जब ध्यान में तुम मनको वश में करना चाहते हो, वह भागता है तब तुम अनुभव करते हो चित्त बड़ा चंचल है।

एक मोरी है, उसमें नीचे सड़ी कीच दब रही है उसके ऊपर से गन्दा पानी बहता रहता है। उसकी दुर्गन्ध दबी ढकी रहती है। जब तुम उस मोरी को स्वच्छ करना चाहोगे वहाँ की कीच हटाओगे तो पहिले पहिले अत्यधिक दुर्गंधि उठेगी ज्यों ज्यों उसे स्वच्छ करोगे त्यों ही त्यों नीचे की सडी कीच निकल कर दुर्गंधि

बढावेगी। किन्तु तुम यदि निरन्तर उसकी स्वच्छता के लिये प्रयत्नशील बने रहोगे उसे गन्धनाशक ओषधियों और जल से धोते रहोगे तो कभी न कभी वह स्वच्छ हो ही जायगी। इसी प्रकार ध्यान के समय चित्त की चंचलता बढ ही जाती है अपने को जान बूझकर बन्धन में कौन डलवाना चाहेगा। किन्तु साधक को उस चित्त की चंचलता से घबराना न चाहिये उसे अवरोध पूर्वक युक्ति से अपने वश में कर लेना चाहिये। किसी बात पर चित्त बहुत अड जाय, तो कुछ कुछ उसकी इच्छा को भी पूरी कर दे। फिर उस पर नियन्त्रण लगा दे। जैसे लडका बहुत ही रोवे तो उसे इधर उधर की कुछ बातें बनाकर कुछ फुसला कर कुछ थोडा देकर चुप कर दे। उसी प्रकार मन के ऊपर नियन्त्रण रखे। उसे स्वच्छन्द न छोड दे। यह दुष्ट मन जहाँ स्वच्छन्द हुआ तहाँ दौडकर सर्व प्रथम यह विषयों में ही जाता है।

उद्धवजी ने कहा—"महाराज! किन किन उपायों से मन को वश में करे। इसके लिये कुछ उपाय बतावें।'

भगवान्ने कहा—"इसके लिये सर्व प्रथम तो आहार शुद्धि की बडी आवश्यकता है। आहार शुद्ध सात्विक हो। उसे बनानेवाले लानेवाले अपने अनुकूल स्वभाव के प्रेमी हों। ऐसे जहाँ तहाँ जिस तिसके हाथका न खा लेना चाहिये। आहार शुद्धि से बुद्धि सात्विकी होती है। सात्विकी बुद्धि से मन वश में हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से भी इन्द्रिय और मन वश में हो जाते हैं। उद्धव मन एक नया बछेडा है। इसे वश में करना बडी युक्ति का काम है। नये घोड़े पर चढ़ाई करने वाले उसे चाल सिखाने वाले कैसी युक्ति से काम लेते हैं। पहिले उसके ऊपर चढ जाते हैं। नई ही नई पीठ पर सवार को चढा देखकर वह बार बार पीठ को हिलाता है ऐसा प्रयत्न करता है कि इसे पीठ से गिरा दूँ। कभी आगे के दो पैरों को ऊपर करके खडा हो जाता

है, कभी भागने लगता है, कभी फुरफुरी लेता है। सवार तो सब युक्तियाँ जानता है उसे अपने मनोनुकूल चलाने के लिये कुछ देर को उसका मन रख देता है, जिधर वह जाता है उधर ही जाने

देता है। जब देखता है आगे यह गड्ढा में गिरा देगा, तो तुरन्त लगाम खींचकर उसे रोक देता है। इस प्रकार कुछ उसकी इच्छा को रखकर कुछ अपने अनुकूल चलाकर अनुरोधपूर्वक उसे अपने वश में कर लेता है। इसी प्रकार साधक इन्द्रियों का संयम करके प्राणायाम के द्वारा सात्विक बुद्धि से मन को अपने वश में कर लेता है। इसी प्रकार मन के निग्रह का नाम राजयोग है। एक मन को वश में करने की सांख्य विधि भी है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! सांख्य विधि क्या है।"

भगवान् ने कहा—"सांख्य में तत्वों की संख्या करनी पड़ती है। प्रकृति से महत्तत्व उससे अहङ्कार फिर इन्द्रिय मन, पंचभूत आदि। बुद्धिमान् साधक की दृष्टि जिधर पड़े उधर ही पदार्थों के उद्भव और प्रलय के सम्बन्ध में सोचे। जैसे वृक्ष को देखा। उसे देखते ही सोचना चाहिये इसमें क्या है, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश है। कैसे उत्पन्न हुआ? बीज से उत्पन्न हुआ। उवरा भूमि के जल के संयोग से बीज अंकुरित हुआ फिर पल्लवित हुआ। तदनन्तर पुष्पित हुआ इसके पश्चात् फलवान् हुआ। अन्त में इसके भौतिक पदार्थ भूतों में मिल जायँगे। जलीय अंश जल में, पार्थिव अंश पृथिवी में वायव्यांश वायु में तैजस अंश तेज में और आकाश का अंश आकाश में। केवल बीज रह जायगा। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु के विषय में अनुलोभ और प्रतिलोभ क्रम से तब तक चिन्तन करता रहे जब तक मन शान्त होकर यह निश्चय न कर ले कि इस संसार महीरुह का एकमात्र बीज परमात्म स्वरूप मैं हूँ। सबमें ही मेरी सत्ता व्याप्त है। मेरी ही सत्ता के कारण सब सत्तावान् हैं। मनुष्य एकान्त में सोचता है, फिर भूल जाता है। इसकी तो अनात्म में आत्म बुद्धि हो गयी है।"

उद्धवजी ने पूछा—"महाराज! कब तक ऐसा चिन्तन करे।"

भगवान्ने कहा—"जब तक दृढ ज्ञान न हो। प्रथम गुरुदेव की शिक्षा दिये हुए आत्मतत्व को भली भाँति समझ ले। फिर संसार से उदासीन तथा विषयों से विरक्त बन जाय। इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करते करते मन अपने दौरात्म्य का परित्याग कर देता है। अथवा योग मार्ग से मन को वश में करे।"

उद्धवजी ने कहा—"योगमार्ग कौन सा भगवन्!"

भगवान ने कहा—"यही अष्टाङ्गयोग जैसे यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि। इनके अभ्यास से भी मन वश में हो जाता है। कैसे भी किसी प्रकार भी किसी साधन से मन को मेरे चरणारविन्दों में लगा दे। मेरी मूर्ति की उपासना से भी चित्त मुझमें लग जाता है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! एक बात मैं पूछना चाहता था, उसे भूल गया। अब उसे पूछना चाहता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"हाँ, पूछो।"

उद्धवजी बोले—'प्रभो! पूछना मैं यह चाहता हूँ, कि को योग का साधक है। वह साधना कर रहा है। साधना के बीच में भूल से-प्रमादवश-उससे कोइ दिन्दनीय कार्य बन जाय, तो योग छोड़कर उसे स्मृतियों के बताये प्रायश्चित्तों मे लगना चाहिये या योग को करते ही रहना चाहिये ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! जो मेरी आराधना करेगा, उससे प्रथम तो कोई निन्दनीय कार्य बनेग ही नहीं। कदाचित् कोई बन भी जाय, तो उसे बहुत बडे प्रायश्चित्तों के पचडों में न पडना चाहिये। योग की अग्नि ऐसी तीव्र होती है, कि वह सभी पशुओं को भस्मसात कर सकती है। योग साधना में और दृढ हो जाना अपने संयम को और तीव्र कर देना यही उसका प्रायश्चित्त है। अन्य किसी साधन के अवलम्बकी आवश्यकता नहीं है।"

उद्धवजी ने पूछा—"तो भगवन् निन्दनीय कर्म के कारण उसे दोप तो लगेगा ही ?"

भगवान् कहा—"पहिले तुम गुणदोप की परिभाषा समझ लो। देखो, जिसका जो अधिकार है, उस अपने अधिकार में दृढता के साथ एक निष्ठ रहना यही गुण है। गृहस्थी है यदि वह यतियों के धर्म का पालन करता है तो उसके लिये यह दोप है। गृहस्थ धर्मों में ही निष्ठा रखना उसके लिये गुण है। कोई यति है वह गृहस्थ धर्म का पालन करता है तो उसका वह दोप है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! वेद में जो पाप कर्मों के त्याग का नियम बताया है वह तो सब के लिये एक सा ही है।"

भगवान् ने कहा—"कुछ साधारण नियम तो मनुष्य मात्र के लिये एक से ही हैं।"

अनेक जन्म जन्मान्तरों के संस्कार वश जन्म से ही कु कर्मों में प्रवृत्ति होती है। उन पाप कर्मों की प्रवृत्ति को छुड़ाने के निमित्त-उनमें आसक्ति न हो, इसी लिये में नियम बनाये गये हैं, कि यह गुण है यह दोष है ' योगी जब योग साधना में प्रवृत्त है, तो उसके सभी अशुभ उस योगाग्नि में जल जायेंगे।"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ तो भगवन् ! आपने राजयोग सांख्य योग तथा अष्टांङ्गयोग द्वारा तो मनको वश में करने के उपाय बताये अब मुझे भक्तियोग का उपदेश करे। भक्ति मार्ग का अधिकारी कौन है से क्या करना चाहिये ?"

भगवान्ने कहा—"उद्धव मैं पहिले ही बता चुका हूँ, कि भक्ति मार्ग मध्यम मार्ग है, इसके अधिकारी के लिये न तो उत्कट वैराग्य की आवश्यकता होती है, न कर्मों में अत्यंत आसक्त पुरुष ही भक्ति मार्ग का अनुसरण कर सकता है। यह भक्ति मार्ग का अधिकारी है, इसकी सब से मोटी पहिचान यह है कि उसकी मेरी भागवती कथाओं के श्रवण पठन और मनन में अभिरुचि हो। जिसकी मेरी कथाओं में श्रद्धा हो गयी है वह भक्ति मार्ग का बटोही है . यद्यपि मेरी कथाओं मे अनुरक्ति होने के कारण उसे अन्य सांसारिक कर्मों से वैराग्य है, यद्यपि वह सम्पूर्ण लौकिक कामनाओं को दुःख रूप जानता है, अनुभव करता है, तथापि उन्हें छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशा में उसे उन कर्मों को करते तो रहना चाहिये, किन्तु विवशता दिखाकर खीजकर करना चाहिये।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! मैं समझा नहीं और स्पष्ट समझावें।

भगवान् बोले—"जैसे भक्त जानता है, कि लोकैषणा के लिये प्रवचन करना, पुस्तकें लिखना तथा अन्यान्य चेष्टायें करना अच्छा नहीं। ये काम परमार्थ मे बाधक हैं ये सब परिणाम मे दुःखप्रद हैं, किन्तु दैववशात् इन कर्मों मे प्रवृत्ति हो गयी है, यह जानते हुए भी कि करने कराने वाले सब सर्वेश्वर ही हैं, हमारे करने से न उन्नति होगी न अधर्म का ही ह्रास होगा, तथापि कर्म छोड़े नहीं जाते, तो इन्हें करे तो सही, किन्तु उनकी निन्दा करते हुए करे। बार बार यह कहे—"भगवान् ने हमें कहाँ फँसा दिया। हाय ! हम अपने अमूल्य समय को इन लोकरंजन कार्यों मे बिता रहे हैं। इन कर्मों को बिना मन के एक भार समझ कर करे और मेरे भजन मे अधिकाधिक समय लगावे। दृढ़ निश्चया बनकर श्रद्धा के सहित प्रेमपूर्वक अधिकाधिक भजन करे। इस प्रकार इन लौकिक कर्मो की निरन्तर निन्दा करते रहने से शनैः शनैः इनमे से आसक्ति हट जायगी और भजन मे अधिक निष्ठा बढ़ती-जायगी। भजन के आधिक्य से उसकी समस्त हृदय स्थित वासनायें नष्ट हो जायँगी।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! मैं मेरी की ऐसी गाँठें हृदय मे पड गयी हैं कि वे भजन में मन लगने ही नहीं देती। सासारिक कार्यों में तो मन बहुत लगता है। नाच हो, ग्राम्यगीत हों उनमे चित्त तन्मय हो जाता है। किन्तु भजन में तो लगाने से भी नहीं लगता।"

भगवान् ने कहा—"इन हृदय की गाँठों के खोलने का उपाय भी तो भजन ही है, ज्यों-ज्यों भजन बढ़ता जायगा त्यो त्यो हृदय की ग्रन्थियाँ अपने आप ही खुलती जायँगी। जो भक्तियोग के द्वारा निरन्तर मेरे भजन में लगा रहेगा, उसकी शीघ्र ही

हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ छिन्न भिन्न हो जाती हैं। उसके समस्त संशय निवृत्त हो जाते हैं और सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं।

उद्धवजी ने कहा—"भगवान्। हृदय की ग्रन्थि के खुलने के लिये अज्ञानके नाशके लिये तो ज्ञान वैराग्य की अत्यंत आवश्यकता है। जब तक उत्कट वैराग्य न हो तब तक अज्ञान का नाश कैसे होगा ?"

भगवान् ने कहा—"इसे तो मैं ज्ञान मार्ग के साधन में बता ही आया हूँ। ज्ञान वैराग्य तो आवश्यक हैं ही, किन्तु जो मत्परायण हो गये हैं, जो मेरी भक्ति से युक्त हैं उनके लिये प्रायः ज्ञान और वैराग्य श्रेय के साधक नहीं होते। मेरी भक्ति स्वतः ही संसार से विराग करा देती है। मेरा भक्त अज्ञानी रह ही नहीं सकता। उसे ज्ञान वैराग्य की उपलब्धि के लिये प्रयत्न शील नहीं होना पड़ता। मेरा भक्ति मार्ग सुविस्तृत राजपथ है, इसमें न धाम है न कंकण पत्थर। न ऊँची नीची भूमि है। छायादार, पक्की एक परम मृदुल भूमि है। आँख मींचकर इस पर चले जाओ। बहुत से लोग शुभ कर्मों से ब्रह्मलोक तक प्राप्त कर लेते हैं। कुछ लोग तप के द्वारा उच्च से उच्च लोकों में पहुँच जाते हैं। कुछ ज्ञानी लोग ज्ञान से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। कुछ वैराग्यवान् लोग वैराग्य के द्वारा ब्रह्मलोक तक को तृण के समान समझते हैं। कुछ लोग योग के द्वारा उत्तमोत्तमलोकों को प्राप्त कर लेते हैं, कुछ लोग दान धर्म, वर्णाश्रम धर्म तथा अन्यान्य धर्मों द्वारा कोई स्वर्ग को कोई मुक्ति को कोई शिवलोक विष्णुलोक तथा अन्यान्य मेरे धामों को प्राप्त कर लेते हैं। मेरा भक्त यदि चाहे तो वह केवल एकमात्र मेरी भक्ति करके ही इन सब फलों को प्राप्त कर सकता है।"

उद्धवजी ने कहा—"तब तो भगवन्! आपके भक्त बड़े लाभ में रहे वे तो स्वर्ग का अनन्द से सुख भोगते रहते होंगे ?"

हँसकर भगवान् ने कहा,"मेरे,, उद्धव भक्त स्वर्ग या वैकुंठ कुछ चाहें तो मुझे बडी प्रसन्नता होती किन्तु आपत्ति तो यह है कि वे स्वर्ग की तो बात क्या मुक्ति को भी नहीं चाहते। मैं उन्हें बुलाकर प्रेमपूर्वक चार प्रकार की मुक्ति देना चाहता हूँ, किन्तु वे ग्रहण ही नहीं करते। वे मेरी सेवा के अतिरिक्त मुक्ति फुक्ति कुछ नहीं लेते। उनके मन मे निरपेक्षता ही उत्कृष्ट एवं महान निःश्रेयस है। जो इस प्रकार निष्काम और निरपेक्ष है जिसकी दृष्टि में स्वर्ग अपवर्ग भी कुछ नहीं ऐसे ही पुरुषों को मेरी भक्ति प्राप्त होती है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! कभी कभी भक्तों के मन मे भी विकार देखा जाता है ?"

हँसकर भगवान् बोले—"उद्धव! जो बुद्धि से परमत्व को प्राप्त हुए हैं ऐसी पूर्ण ज्ञानियों को और मेरे अनन्य भक्तों को गुण दोष दृष्टि से होने वाले विकार नहीं होते। कहीं विकार से प्रतीत भी हों तो वह उनकी क्रीडा है, विनोद है। वे तो मेरे रूप ही हो जाते हैं।"

इस प्रकार उद्धव मैंने तुम्हें मन को वश करने के कई उपाय बताये। जो साधक इन उपायों का अवलम्बन करते हैं, वे मेरे क्षेममय परम धाम को प्राप्त होते हैं। उन्हें मेरे ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान भी हो जाता है। ये मैंने संक्षेप में मनवश करने के उपाय बताये अब तुम और क्या पूछना चाहते हो ?"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! जो आपके इन उपायों को को नहीं करते उनकी क्या गति होती है ?"

हँसकर भगवान् बोले—"अच्छा, यह तुम्हारा प्रश्न बडा उपयुक्त है, इसका उत्तर मैं आगे दूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् जैसे बहिर्मुख पुरुषों की गति का वर्णन करेंगे उसे मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

मेरी पूजा करै कथा सुनि मम गुन गावै।
होहि कर्म आसक्ति ताहि नित निन्द्य बतावै॥
भजन भावकूँ नित्य बढावै करमनि त्यागै।
करत-करत अभ्यास वासना हिय की भागै॥
भक्ति मार्ग अति सुगम सुठि, है निरपेक्ष निकाम नित।
त्यागि स्वर्ग अपवर्ग सुख, मोमें राखै भक्त चित॥

—:०:—

साधन विहीनों की गति

(१२९६)

ए एतान्मत्पथो हित्वा भक्ति ज्ञान क्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥*

(श्री भा० ११ स्क० २१ अ० १ श्लो०)

छप्पय

ज्ञान करम अरु भक्ति कहे साधन परमारथ ।
जे तजि इनकूँ क्षुद्र विषय सुख साधें स्वारथ ॥
पुनि पुनि जनमें मरें घोर ते नरकनि जावें ।
पाइ मनुजतनु विषय निरत ते पुनि पछितावें ॥
चौरासी के चक्र महँ, घूमि पाहिँ पुनि मनुज तन ।
तब छूटें संसार तैं, यदि साधन महँ देहिँ मन ॥

बन्धन और मोक्षका कारण मन ही है। मन यदि सांसारिक विषयों में लगा रहेगा, तो सदा संसार ही प्राप्त होता रहेगा। पुनः जन्म होगा पुन। मृत्यु होगी नाना योनियों मे ये ही विषय प्राप्त

---

*श्री भगवान् उद्धव जी से कह रहे हैं—"उद्धव! जो मेरी प्राप्ति के ज्ञान, भक्ति और कर्म रूप इन उपायों को छोड़कर अपनी चंचल इन्द्रियों से क्षुद्र सांसारिक भोगों को भोगते रहते हैं वे पुन पुन ज मते और पुन. पुन मरते रहते हैं उनका आवागमन लगा ही रहता है।"

होते रहेंगे। आहार मैथुनादि सुख तो सभी योनियों में हैं। सूकर कूकर भी अपने आहार को बडी रुचिसे खाते हैं और इन्द्र भी अमृत का पान बडी रुचि से करते हैं। इन्द्र जितने सुखी अपनी इन्द्राणी के साथ हैं उतना ही सुख सूकर अपनी सूकरी के साथ अनुभव करता है। विषय तो चाहें स्वर्ग लोक के हों या तुच्छ मनुज लोक के सब बराबर ही हैं। अत' विषयों की इच्छा रखने वाले को बार बार ससार में आना जाना पडेगा। जो इन विषयों को हेय समझ कर परमार्थ साधन मे लग जायँगे वे इस ससार सागर से पार हो जायँगे।

यह आवश्यक नहीं कि हम जन्म से ही परमार्थ का साधन करें तभी हमें परम कल्याण की प्राप्ति हो सकती है। जिस क्षण भी चेत हो उसी क्षण से परमार्थ साधन मे लग जाना चाहिये। चाहे कोई कितना भी बडा पापी क्यों न हो, यदि उसकी पाप से घृणा हो जाय, और वह ज्ञान मार्ग अथवा भक्तिमार्ग किसी भी मार्ग का आश्रय ग्रहण करले, तो उसके समस्त पाप साधना के द्वारा भस्म हो जायगे। फिर वह पतन की ओर नहीं जा सकता। एक जन्म में दो जन्म मे अथवा तीन जन्मों में साधक निश्रेयस् का अधिकारी हो सकता है। इस विषय म एक पौराणिक इतिहास है।

कोई ब्राह्मण का युवक पुत्र था। उसकी प्रवृत्ति विषयों म थी। पिता उसे बहुत रोक्ते थे, किन्तु उसे विषयों में ही सुख प्रतीत होता था। बालकपन मे तो वह पिता के शासन में रहता था, किन्तु जब उसकी युवावस्था हुई तो उसने सब बन्धन तोड फेंके। वह स्वच्छन्द हो गया। यौवन के उमग में उसने एक चाँडाला से अपना सम्बन्ध जोड लिया और उसी के साथ रहने लगा। उसके गर्भ से उसके कई सन्तानें भी हुई। वह भी एक प्रकार से चाडाल ही बन गया।

वह जो चांडाली थी, उसे मांस मदिरा अत्यंत प्रिय था। वह सदा माँस खाती और मदिरा पान करती, किन्तु इस युवक की मांस मदिरा मे रुचि नहीं थी। वह कभी भूलकर भी मदिरा पान नहीं करता था। वह चाडाली वार वार कहती—"प्राण नाथ आप मांस खाया करें मदिरा पान किया करें।"

इस पर यह विपयी विप्रकुमार कह देता—"प्रिये! क्या वताऊँ, मदिरा का नाम सुनते ही मुझे उबकाई आने लगती है। तू मेरे सम्मुख मदिरा का नाम न लिया कर।" यह सुनकर चांडाली चुप हो जाती, किन्तु उसकी इच्छा वनी ही रहती, कि यह मेरा जार पति भी मदिरा पीया करे।"

एक दिन वह युवक दिन मे अपनी स्त्री के समीप सो रहा था। उसका मुख कुछ फट गया था। उस स्त्री ने सोचा—'इस समय तनिक सी मदिरा मैं इनके मुख मे डाल दूँ। इन्हें जव इसका स्वाद लग जायगा, तो ये पीने लगेंगे। यही सोचकर उसने मदिरा की कुछ बूँदें उस युवक के मुख मे डाल दी। मदिरा डालते ही एक ऐसी प्रचंड अग्नि निकली कि वह चांडाली जलकर भस्म हो गयी, घर भी जल गया किन्तु ब्राह्मण कुमार न जला। पीछे आकाश वाणी हुई कि—"हे युवक! यह तुम्हारे व्रत के ही कारण तुम्हारे मुख से अग्नि निकली।" अव उस युवक को ज्ञान हुआ, कि हाय! मेरे भीतर इतनी शक्ति थी, उसे मैंने इन क्षुद्र विपयों मे लगा कर नष्ट—कर दिया। अव हुआ सो हुआ आगे से मैं ऐसा न करूँगा। अव मैं परमार्थ के लिये प्रयत्न करूँगा।" ऐसा निश्चय करके उसने परमार्थ साधन प्रारम्भ कर दिया। उस साधन से उसके समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो गये और वह मोक्षका अधिकारी वन गया। अतः जव से भी चेत हो तभी से शास्त्रोक्त साधनों में लग जाना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते उन्हें वार वार जन्मना और मरना पड़ता है। चौरासी के चक्कर मे ऐसे ही

घूमते रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब उद्धवजी ने भगवान् से साधन विहीन पुरुषों की गति के सम्बन्ध में पूछा, तो भगवान् कहने लगे—"उद्धव ! जीव का एक मात्र परम पुरुपार्थ मेरी प्राप्ति करना ही है। समस्त शुभ साधन मुझ सर्वेश्वर की प्राप्ति के ही निमित्त किये जाते हैं। मेरी प्राप्ति शुद्ध अन्तः करण से होती है। अन्तःकरण की शुद्धि शुभ कर्मों के अनुष्ठान से होती है। शुभ कर्मों का अनुष्ठान करते करते या तो ज्ञान मार्ग में प्रवृत्ति हो जाती है, या भक्ति मार्ग में। इन दोनों ही मार्गों से वह कल्याण का अधिकारी हो जाता है। जो न तो शुभ कर्मों का ही अनुष्ठान करते हैं न भक्ति तथा ज्ञान के लिये ही प्रयत्न शील होते हैं, उन लोगो की बुद्धि अस्थिर हो जाती है। बुद्धि तो बहुमुखी है, उसे केन्द्रित करने के लिये कोई अवलम्बन चाहिये। ज्ञान भक्ति यही अवलम्बन हैं, जो इनका आश्रय ग्रहण नहीं करते क्षुद्र सांसारिक भोगों के ही पीछे पागल बने रहते हैं वे नरकादि लोकों में पापों का फल भोग कर आते हैं और क्षुद्र योनियों को पाकर उनमें जन्म से ही पाप करने लगते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! जन्म से तो सभी बालक एक से होते हैं बिना सिखाये आरभ से ही जीव पाप कैसे करने लगते हैं ?"

सूतजी ने कहा—"भगवान् ! यह शरीर पाप पुण्यों प्राप्त होता है। पुण्यात्मा पुरुष होगा, तो माता पिता के रजवीर्य में पुण्यमय परमाणु एकत्रित होंगे। यदि पापात्मा पुरुष का जन्म होना होगा, तो माता पिता के रज वीर्य में पापमय परमाणु एकत्रित होंगे। वे पापमय परमाणु, पाप मय वेग उत्पन्न करेंगे उनसे जो गर्भा धान होगा वह पाप मय होगा उससे जो सन्तानें होंगी, उनकी पाप में स्वतः प्रवृत्ति होगी। संस्कार तो उनके जन्मों के

रहते हैं, जैसे जिसके संस्कार होते हैं वैसा ही वह काम करने लगता है। कभी शुभ कर्म बन गया, तो कभी स्वर्ग भी चला जाता है, पुण्य समाप्त होने पर फिर पृथिवी पर जन्म लेता है। पाप करता है तो नरकों मे जाता है। इस प्रकार स्वर्ग नरक तथा नाना योनियों के चक्कर मे घूमता रहता है। नरक अनेकों हैं। मृत्यु होने पर जीव को भोग शरीर मिलता है। उस शरीर को बिच्छू, सर्प, मच्छर, गिद्ध तथा बडी बडी चोंचवाले अन्यान्य पक्षी नोचते रहते हैं। इस जीव को बडा क्लेश है, भूख प्यास लगती तो बहुत है, किन्तु उसे कुछ आहार नहीं मिलता। कभी उन्हें ऊपर से गिराया जाता है, कभी गरमा गरम बालू मे चबेने की भाँति भूना जाता है, कभी गरम तैल के कड़ाहे मे पकौडी की भाँति तला जाता है, कभी मूत्र विष्ठा, रज, वीर्य तथा रक्त आदि के कुंडों में निरन्तर डुबोया जाता है, कभी हिमके खंडों पर लिटा दिया जाता है, कभी कोल्हू में पेरा जाता है, जैसा यहाँ पाप किया है उसीके अनुसार उन्हे दंड दिया जाता है। जो व्यभिचारी स्त्री पुरुष हैं उन्हे नग्न कर दिया जाता है यदि स्त्री है तो उसे लोहे की तपी हुई लाल पुरुष की मूर्ति से आलिंगन कराया जाता है, यदि पुरुष है तो उसे ऐसी ही लोहे की स्त्री से कराया जाता है। उस समय वे हाय हाय करते हैं यम दूत उन्हें गरम गरम लोहों की सलाकाओं से मारते हैं। वहाँ पर मुख्यतया उन पापों का दंड भोगना पडता है, जिनका यहाँ प्रायश्चित्त नहीं किया है।

कहीं अगों को काटा जाता है, फिर वह जुड जाता है, फिर उसे काटते हैं। यातना शरीर की मृत्यु नहीं होती। उसे चाहे काट दो जला दो जल में डुबा दो। यन्त्रणा तो मिलेगी किन्तु मरेगा नहीं। जैसे जैसे नरक होते हैं उन में वैसी ही वैसी यातनायें दी जाती हैं। नरक अनन्त हैं, पुराणों में बडे विस्तार के साथ इन सबका वर्णन है। कुछ पाप शेष रह जाने के अनन्तर जैसा पाप

होता है उसी के अनुसार उसे फिर पृथिवी पर हीन योनि में जन्म लेना पड़ता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! किस पाप से किस हीन योनि में जन्म लेना होता है।

हँस कर सूतजी बोले—"अजी महाराज! कहाँ तक गिनाऊँ चौरासी लाख योनियाँ हैं। किसी न किसी पाप पुण्य से कोई न कोई योनि प्राप्त होती ही है। इन सबका विवरण सुनाने लगूँ, तो एक अलग ही महाग्रन्थ बन जाय। इसलिये उदाहरण के लिये कुछ का वर्णन करता हूँ।

ब्राह्मण होकर जो पतितों से दान लेता है उसे गदहा होना होता है। पतितों से जो वैदिक यज्ञ कराते हैं वे नरक भोग कर कीड़े मकोड़े होते हैं। कुत्ते की योनि उसे प्राप्ति होती है जिसने पहिले गुरु के साथ छल कपट का व्यवहार किया हो। अपनी भाभी का अपमान करने वाला कबूतर होता है। उसे जो पीड़ा पहुँचावे वह जल का कछुआ होता है। स्वामी का अन्न खाकर उसका जो कार्य नहीं करता वह नरक भोगकर बंदर की योनि मे आता है। जो सदा दूसरों के दोषों को ही देखता रहता है वह नरकों में यातनाये सहता है, फिर आकर राक्षस होता है। जो किसी को विश्वास दिला कर फिर विश्वास घात करता है वह मछली होता है। जो दूसरों का अन्न आदि चुराता है, वह मूसा होता है। जो पर स्त्री गामी होता है, वह नरकों की यातना भोगने के अनंतर भेड़िया होता है। ये जितने व्यभिचारी विषयासक्त पुरुष हैं ये मर कर कुत्ता सियार, बगुला, गिद्ध, सर्प, कौआ तथा सूअर आदि होते हैं। जो देवता पितरों को बिना पूजे बिना भगवान् का भोग लगाये भोजन करता है वह कौआ होता है। सूअर, कृमि, विष्ठा का कीड़ा तथा अन्यान्य क्षुद्र अधम योनियाँ अपने से श्रेष्ठ स्त्री से संसर्ग के पाप से मिलती है। जो भोजन चुरा लेता है वह

मक्खी होता है। साधारण अन्न चुराने वाला बिल्ली, तिलमिश्रित खिचडी रेवडी आदि चुराने वाला चूहा, घी मिश्रित वस्तु चुराने वाला नेवला दूध को चोरी करने वाला वगुला, मीठी वस्तु माल पूआ आदि चुराने वाला चींटी होता है। इसी प्रकार धातुओं तथा वस्त्रों की चोरी करने वाले चकवा, रेशमका कीडा, डॉस कीडा तथा अन्यान्य योनियों में जाते हैं। जो लोग नरकों से लौट कर इन पाप योनियो को भोगकर फिर मनुष्य होते हैं, वे नारकीय अपने लक्षणों से ही पहिचान लिये जाते हैं कि ये नरक से लौटे हुए जीव हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूत जी! उन नारकीय पुरुषों की क्या पहिचान है? किन लक्षणों से हम जानें कि ये नारकीय जीव हैं?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! जो लोग नरक से लौट कर किसी तरह मनुष्य योनि में आते हैं उनकी सब से मोटी पहिचान तो यह है कि वे सदा दूसरो की निन्दा किया करते हैं। उन्हें बिना बात दूसरों की निन्दा करने में एक प्रकार के सुखका अनुभव होता है। वे लोग किसी का उपकार नहीं मानते। जीवन भर उनके साथ उपकार करो तनिक सी वात उनके मन के विरुद्ध हुई, तो वे शत्रु बन जायँगे और उपकारी का अनिष्ट करेंगे। दूसरो के गुप्त भेदो को खोलने में वे एक प्रकार के गर्वका अनुभव करते हैं और चाहें सत्य न भी हो, तनिक से सन्देह पर लोगों को लॉछित कर देते हैं। वे निष्ठुर और निर्दयी होते हैं। अपनी स्त्री को त्याग कर पर स्त्री गमन मे उनकी अत्यधिक रुचि रहती है। दूसरों के धन पर दूसरो की वस्तुओ पर सदा दृष्टि लगाये रहते हैं, वे अपवित्र रहते हैं कृपण होते हैं, दूसरो को ठगने के सदा प्रयत्न करते रहते हैं। निषिद्ध कर्मों मे स्वभाव से उनकी प्रवृत्ति रहती है। बुरे लोगों के संसर्ग में उन्हें आनंद आता

है। इन सब लक्षणों से समझ लेना चाहिये कि यह नरक से लौटा हुआ जीव है। कुछ लोग स्वर्ग से भी लौट कर मनुष्य होवे हैं, वे भी अपने कर्मों से पहिचाने जाते हैं, कि ये स्वर्गीय जीव हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! स्वर्गीय लोगों की क्या पहिचान है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! जो लोग स्वर्ग से लौट कर मनुष्य शरीर में जन्म लेते हैं, वे स्वभाव से सभी पर दया करते हैं, वे सब से प्रेम पूर्वक हितकर वचन बोलते हैं, उनकी पुण्य कर्मों में स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, वे यथा साध्य असत्य भाषण नहीं करते, वेदों पर, गुरु वचनों पर देवता, पितर सिद्ध ऋषि तथा सन्तो के वचनों पर विश्वास रखते हैं और सदा इनका सत्कार करते हैं। उन्हें सज्जनों की संगति प्रिय होती है वे सदा अच्छे कर्मों में लगे रहते हैं, दान धर्म के कार्यों को करते हैं। इन सभी कार्यों से अनुमान लगाया जाता है, कि ये स्वर्गीय जीव हैं। स्वर्ग हो नरक हो ये सब बन्धन के कारण हैं। इनसे संसार का आवागमन तो नहीं छूटता। ज्ञान भक्ति से ही परम शान्ति की प्राप्ति होती है। अतः मनुष्य शरीर पाकर भक्ति, ज्ञान तथा कर्म मार्ग इनमें से किसी को ग्रहण करके संसार को भूलकर भगवान् की ओर लगना चाहिये। जिसका जो धर्म हो अपने अपने अधिकार के अनुसार उसी में दृढ़ता पूर्वक स्थित हो जाना चाहिये। यही सब से बड़ा गुण है और जो अपने धर्मका को छोड़ कर अनाधि चेष्टा करता है यही बड़ा दोष है। वस्तुओं का व्यवहार करते समय इस बात की सदा सावधानी रखनी चाहिये कि यह शुद्ध है या अशुद्ध यह सदोष है या निर्दोष।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियों ! सब काम सोच समझकर निष्ठा के साथ करना इसी का नाम तो साधन है। जो वैसे ही

आँख मूद कर करता जायगा उसका संसार वन्धन कभी न समाप्त होगा।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! कौन वस्तु शुद्ध है कौन अशुद्ध है, कौन सदोप है कौन निर्दोप है, कौन शुभ है कौन अशुभ है, इसका भी विवेचन कीजिये इस विषय को भी हमे समझायें।"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी वोले—"महाराज! मैं आप को भगवान् और उद्धव का सवाद सुना रहा था। उद्धवजी ने भी भगवान् से शुद्धि अशुद्धि, गुण दाप तथा शुभ अशुभ के ही सम्वन्ध मे प्रश्न किया था। अब भगवान् ने जैसे उद्धवजी के प्रश्नों का उत्तर दिया, उन्हें सक्षेप में शुद्ध अशुद्ध के सम्वन्ध में वताया इस सबका वर्णन मैं आप से करूँगा। यह बडा ही आवश्यक विषय है। परमाथ पथ के पथिक को इस विषय का जानना परमावश्यक है। आप सब इस विषय को सावधानी के सहित श्रवण करें।"

छप्पय

जो जाको अधिकार सुदृढता ता महँ गुन है।
अनधिकार विपरीत कर्म सोई अवगुन है॥
परिभाषा गुन दोप विवेचन जिहि बताई।
वस्तु सकल सम किन्तु भिन्नता वेद जताई॥
शुद्धि अशुद्धि विचार है, धर्म हेतु पुनि दोप गुन।
कहे सकल व्यवहार हित, यात्रा हित शुभ अशुभदिन॥

शुद्धि-अशुद्धि विवेचन

(१२९७)

शुद्ध्य शुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥

(श्री भा० ११ स्क० २१ अ० ३ श्लो०

छप्पय

पञ्च भूतमय देह कहे अजतैं नग द्रुम तक ।
भिन्न भिन्न हैं नाम रूप तनके सब साधक ॥
करमनि नियमित करन देश कालादि बखाने ।
शुद्ध देश कछु कहे कछुक अति शुद्ध न माने ॥
द्रव्य सँयोग स्वभाव तैं, होहिं कर्म जिहि काल महँ ।
वही शुद्ध, नहिं कर्म जब, होहिं अशुद्ध त्रिकाल महँ ॥

शुद्धि क्या है अशुद्धि क्या है. शुचि क्या है अशुचि क्या है, शुभ क्या है ये सब बातें तर्क से नहीं जानी जा सकतीं। इस विषय में शास्त्र ही प्रमाण है । शास्त्र जिसे शुचि कह दे वह शुचि है जिसे अशुचि कह दे वह अशुचि है । हड्डी अशुचि है, किन्तु शंख नामक जीव की हड्डी शुचि मानी गयी है, शंख को मुँह से

---

*भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव ! समान वस्तुओं में भी द्रव्य की विचिकित्सा के निमित्त शुद्धि अशुद्धि, दोष गुण तथा शुभ और अशुभ का विधान किया गया है ।"

बजाते हैं, शंख के जल से शालग्राम जी को स्नान कराते हैं। शंख का जल डालने से भोजन पवित्र हो जाता है। इसी प्रकार चर्म अपवित्र है, किन्तु मृग का चर्म पवित्र माना गया है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा यति मृग चर्म ही ओढ़ते बिछाते हैं। जूठी वस्तु अपवित्र मानी गयी है, किन्तु मधु को मधुमक्खियाँ मुँह में ही लाती है, उसे पवित्र माना गया है। कुत्ता से किसी वस्तु का स्पर्श हो जाय, कुत्ता किसी वस्तु को सूंघ दे। वह महा अपवित्र हो जाती है। किन्तु आखेट में कुत्ता मृतक जीव को मुख मे दबाकर लाता है उसे पवित्र माना गया है। इसमें तर्क नहीं चलती। इस विषय मे शास्त्र ही प्रमाण है। स्मृतिकारों ने विशेष रूप से शुद्धि अशुद्धि के ही विषय का विवेचन किया है। अन्य शास्त्र भी इस विषय का सामान्य रूप मे वर्णन करते हैं।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"ऋषियो! 'अब मैं उस धर्म शास्त्र के विषय को सुनाता हूँ, जिसका वर्णन उद्धवजी के पूछने पर श्री भगवान् ने किया है। भगवान् कह रहे हैं— "उद्धव! वस्तुएँ सभी एक सी हैं। सभी पंचभूतों से निर्मित हैं संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो पंचभूतों से न बनी हो। जब सभी मे एक ही तत्व है तो उसमे कौन शुद्ध कौन अशुद्ध। भूमि से ही लहसुन प्याज आदि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उसी से तुलसी बिल्व पत्रादि भी। प्याज लहसुन त्याज्य है। बिल्व तुलसी पत्र परम शुद्ध है। माता, बहिन, पुत्री, पत्नी, तथा सभी स्त्रियाँ एक सी ही धातुओं की बनी हैं किन्तु इनमें कौन अगम्या है कौन गम्या है। इसका निर्णय शास्त्र ही करता है। मनुष्यों की वासना मूलक स्वाभाविक प्रवृत्ति का संकोच करने के ही निमित्त यह शङ्का की जाती है यह ग्राह्य है यह त्याज्य है, यह हेय है यह उपादेय है। नित्य के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं के विषय में शास्त्र निर्णय करता है यह वस्तु शुद्ध है अतः व्यवहार्य है, यह

अशुद्ध है अतः त्याज्य है। इस अशुद्ध वस्तु की शुद्धि कैसे हो सकती है। अमुक कार्य करना गुण है अमुक कार्य करना दोष है। अमुक काल शुभ है अमुक अशुभ है। इन सब का विचार आचारवान् पुरुषों को सदा करना पड़ता है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! शुद्धि अशुद्धि का विचार करते ही क्यों हैं।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई शुद्धि अशुद्धि का विचार न करें तो धर्म का पालन कैसे हो। शौच का लोटा है अशुद्ध है, जब तक उसे तीन चार शुद्ध मृत्तिका से न मला जाय, तब तक वह अशुद्ध ही बना रहेगा। इसी प्रकार सूतक पातक में अशुद्धि हो जाती है, १० दिन से १३ दिन में जैसा जिसका वर्ण है वैसे ही उसके लिये शुद्धि होती है।

उद्धवजी ने पूछा—'अच्छा, फिर गुण दोष का इतना विवेचन क्यों किया जाता है ?

भगवान् ने कहा—'गुण दोष का ऐसा निवेचन न किया जाय, तो व्यवहार कैसे चले। लौकिक व्यवहार के लिये गुण दोष का विचार परमावश्यक है। बड़ों के सम्मुख नम्र रहना अशिष्टता न करना यह गुण है। उनके सम्मुख अकड़ जाना, अशिष्टता करना यही दोष है। गुण दोष के बिना व्यवहार शुद्धि होती ही नहीं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! शुभ अशुभ का विचार क्यों किया जाता है ?"

भगवान् ने कहा—"लोक यात्रा के लिये शुभा शुभ विवेचन करना ही पड़ता है। अमुक ग्रह हमारे लिये शुभ है या अशुभ। अमुक तिथि अमुक वार, अमुक नक्षत्र अमुक चन्द्रमा हमारे लिये शुभ है या अशुभ है। अमुक दिन अमुक दिशा में जाना शुभ होगा या अशुभ इसी प्रकार लोकयात्रा सम्बन्धी सभी बातों

पर शुभा शुभ का ध्यान रखकर कार्य किया जाता है। कोई आपत्काल है यात्रा मे हैं, असत् का प्रतिग्रह लेना अशुभ बताया है, किन्तु वहाँ प्रतिग्रह न लें तो प्राण रक्षा न हो। ऐसी दशा में केवल प्राण रक्षा के लिये असत्ग्रह ले लेना अशुभ नहीं है। यह आपद धर्म है। इसी प्रकार के अन्य विषयों मे शुभ अशुभ का विचार किया जाता है।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! यह तो बड़ी भारी शृंखला है। दिन भर शुभ-अशुभ शुद्धि अशुद्धि का ही निर्णय करते रहो।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"उद्धव! किया क्या जाय। अधिकांश लोगों की प्रवृत्ति, विधि निषेध रूप धर्म में ही है। जो केवल धर्म का ही भार वहन करने वाले मनुज हैं उन्हीं के निमित्त मनु याज्ञवल्क्य आदि रूपों से मैंने यह स्मार्त धर्म आचार विचार का मार्ग प्रदर्शित किया है। शुद्धि अशुद्धि गुण दोष तथा शुभ अशुभ विचार बिना किये धर्म का निर्वाह हो ही नहीं सकता। जहाँ नाम रूपात्मक जगत् है वहाँ तो भिन्नता करनी ही पड़ती है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! सब मे समान रूप से भौतिक तत्व हैं तो नाम रूपों की व्यर्थ कल्पना क्यों की गयी।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"भैया! नाम रूप की कल्पना न हो, तब तो फिर कोई पुरुषार्थ ही न हो, धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष के सभी साधन व्यर्थ हो जायँ। । नामरूपों की कल्पना न हो तब तो इनकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती। यद्यपि ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी प्राणियों के उपादान कारण पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश ये ही पंचभूत हैं। समस्त चर अचर जड चेतन शरीर इन पंचभूतों से ही निर्मित हैं और इन सभी में आत्मारूप से मैं व्याप्त हूँ, तथापि इन शरीरों के धर्माधर्म रूप

पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये वेद ने इनके भिन्न भिन्न नामरूपों की कल्पना की है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! फिर इसकी आवश्यकता क्या थी ?"

हँसकर भगवान् ने कहा—"अरे, भाई ! कर्म तो अनन्त हैं सब कर्मों को सब थोड़े ही कर सकते हैं। सबके धर्म पृथक् पृथक् न किये जायँ, तो सब एक में गड़बड़ घुटाला हो जाय। अतः कर्मों को नियमित तथा संकुचित करने के ही निमित्त मैंने यह पृथकता कर दी है, कि यह देश है यह काल है। ये देश पवित्र हैं ये अपवित्र हैं, यह काल शुभ है यह अशुभ है। यह वस्तु शुभ है यह अशुभ है। ऐसा न करता तो सब देश एक से ही हो जाते। भूमि तो सबकी एक सी ही है, किन्तु शास्त्र दृष्टि से देखा जाता है यह देश शुभ है या अशुभ।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! शुभ और अशुभ देश की परिभाषा क्या है ? किस देश को शुभ मानें किसे अशुभ।"

भगवान् ने कहा—"पवित्र देश की सामान्य परिभाषा यह है, कि जिन देशों में कृष्णमृग स्वच्छन्द विचरण करें, वह देश पवित्र है। वह यज्ञीय देश है, उसमें यज्ञादि करने से परम पुण्य होता है। जैसे गङ्गा यमुना के मध्य की ब्रह्मावर्त देश की भूमि तथा गङ्गा यमुना के दोनों किनारों के देश। साथ ही उन देशों के निवासी ब्राह्मण भक्त भी हों।

उद्धवजी ने पूछा—"अपवित्र देश कौन कौन से हैं भगवन् !" भगवान् ने कहा—"जहाँ कृष्णसार मृग स्वच्छन्द विचरण न करते हों तथा जहाँ के लोग ब्राह्मणों के भक्त न हों वे देश अपवित्र हैं। साथ ही कुछ देशों की कीकट संज्ञा है, उनमें चाहें कृष्णसार मृग स्वच्छन्द विहार करते भी हों, तो भी वे अपवित्र हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! किन देशों की कीकट

संज्ञा है ?"

भगवान् ने कहा—"कन्या कुमारी से हिमालय तक के देश का नाम भारतवर्ष है। वर्णाश्रम धर्म इतने के ही बीच में है। इसके अनन्तर समुद्र पार जितने अनार्य देश हैं वे वर्णाश्रम से हीन दस्यु देश हैं। समुद्र पार करके व्यापारादि के लिये जाना हो, तो प्रायश्चित्त करना चाहिये। भारत मे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र, मगध, मद्रादि ऐसे देश हैं, कि इनमें तीर्थयात्रा के बिना जाया जाय, तो पुनः संस्कार कराना चाहिये। अर्थात् यज्ञोपवीत बदल देना चाहिये।" जैसे म्लेच्छों के आवास स्थान अपवित्र बताया है। वैसे ही ऊसर भूमि को भी अपवित्र बताया है। ऊसर भूमि मे यज्ञ आदि पुण्य कार्य करने निषेध हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् आप ने देश की शुद्धि अशुद्धि तो बताई अब काल को शुद्धि अशुद्धि और बतावें। कौन सा काल शुद्ध है ?"

भगवान् ने कहा—"जो द्रव्य जिस काल में आवश्यक हो और वह उस काल मे मिल जाय, वही काल शुद्ध है। अथवा स्वभाव से भी काल शुद्ध माना गया है। जैसे प्रातःकाल है प्रातः सन्ध्या के लिये वह शुभ काल है। सायंकाल का समय है सायं-कालीन सन्ध्या के लिये वह शुभ है। विवाह सम्बन्धी लग्नें हैं वह काल विवाह के लिये शुभ है। यज्ञोपवीत को लग्नें हैं वह यज्ञोपवीत के लिये शुभ है। दिशाशूल बायें हो, राहु और योगिनी पींठ पीछे हों सम्मुख चन्द्रमा हो। रिक्ता से रहित नन्दा भद्रा जया और पूर्णा तिथि हों ऐसा काल यात्रा के लिये शुभ है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् ! अशुद्ध काल कौन सा है ?

भगवान् ने कहा—"इसके जो विपरीत काल हैं वह अशुभ है। जिसमें कर्म वर्जित हैं वह काल भी अशुभ है। जैसे ग्रहण

लगने पर यह न करे। सूतक पातक में यह कर्म न करे। अमुक समय में यह न करे, तो उन उन कर्मों के लिये वे वे काल अशुभ माने गये हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! पदार्थों की शुद्धि अशुद्धि कैसे होती है?"

भगवान् ने कहा—"पदार्थों की शद्धि अशुद्धि में कई कारण हैं। पदार्थों से भी पदार्थों की शुद्धि अशुद्धि होती है। जैसे शौच का लोटा है उसे मिट्टी से मलकर धोओ तो शुद्ध हो जायगा। उसी को दूसरे अपवित्र जल से धोओ तो अशुद्ध ही बना रहेगा। वचन से भी वस्तुओं की शुद्धि अशुद्धि होती है। जैसे किसी वस्तु के विषय शङ्का हो गयी, कि जाने यह शुद्ध है या अशुद्ध जब तक विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण से पूछ नहीं लेते तब तक वह अशुद्ध है। जहाँ ब्राह्मण ने कह दिया शुद्ध है तुरन्त वह शुद्ध हो गयी, उसका कुछ भी संस्कार न करना पडा। यज्ञ मे कोई नियम की क्रिया की अशुद्धि रह गयी ब्राह्मणों ने कह दिया सब परिपूर्ण हुआ सब शुद्ध हुआ। बस, ब्राह्मणों के वचनों से सब अशुद्धि दूर हो गयी मैं तो यहाँ तक कहता हूँ, यात्रा मे चाहे राहु, योगिनी, दिशाशूल, चन्द्रमा तथा नक्षत्र आदि सब विपरीत हों, किन्तु ब्राह्मण कह दे सब शुद्ध है तुम यात्रा करो, तो ब्राह्मण वाक्य को मानकर यात्रा करनी चाहिये उसमें सभी अनुकूल हो जाते हैं। वचनों पर जैसा विश्वास होता है, वैसा ही फल मिलता है। संस्कार से भी शुद्धि अशुद्धि होती है।

उद्धवजी ने पूछा—"संस्कार से कैसे शुद्धि अशुद्धि होती है?"

भगवान ने कहा—"जन्म से बालक शूद्रवत होता है। संस्कारो के ही कारण उसकी द्विज संज्ञा होती है। संस्कार हो जाते हैं, तो शुद्ध हो जाता है नहीं अशुद्ध ही बना रहता है। मृगचर्म है, उसका भली भाँति संस्कार हो जाता है तो शुद्ध हो जाता है

नहीं अशुद्ध ही बना रहता है। पुष्प है जल छिड़कने से शुद्ध हो जाता है। उसे जल में डुबो दो, भूमि पर गिरा दो, सूँघ लो, अरड के पत्तों में रख दो तो अशुद्ध हो जायगा। कहीं काल से शुद्धि अशुद्धि होती है।"

उद्धवजी ने पूछा—'भगवन् काल से शुद्धि अशुद्धि कैसे होती है।"

भगवान् ने कहा—"जैसे भोजन बनाकर रखा उस समय शुद्ध है। बना बनाया भोजन एक दिन रखा रहा वह अशुद्ध हो गया। इसी प्रकार बहुत सी वस्तुएं एक समय शुद्ध मानी जाती हैं दूसरे समय वे ही अशुद्ध मानी जाती हैं। छोटे बड़े पन से भी शुद्धि अशुद्धि है ?"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! छोटे बड़े पन से शुद्धि अशुद्धि कैसे है ?"

भगवान ने कहा—"जैसे बहुत सा जल भर रहा है उसके ऊपर चाहें कोई जल पीवे नहावे जो चाहे करे, नीचे हम नहा रहे हैं सन्ध्या वन्दन कर रहे हैं, इसमें कोई अशुद्धि नहीं। वही जल गड्ढे में हो, तो दूसरे के हाथ धोने नहाने से अशुद्ध हो जायगा। छोटे पात्र में तो दूसरे के छूने से ही अशुद्ध माना जायगा। कहीं सामर्थ्य या असामर्थ्य से शुद्धि अशुद्धि मानी जाती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! सामर्थ्य असामर्थ्य के अनुसार शुद्धि अशुद्धि कैसे मानी जाती है ?"

भगवान् ने कहा—"जैसे सूर्य चन्द्र ग्रहण के तीन चार प्रहर पूर्व सूतक माना जाता है, उसमें भोजनादि वर्जित है, किन्तु जिनकी शक्ति नहीं जो असमर्थ हैं, जैसे बालक, वृद्ध, अथवा रोगी, उनके लिये यह नियम नहीं है। बिना स्नान के कुछ खा लेना दोष है, किन्तु जो रोगी हैं असमर्थ हैं उनके लिये दोष नहीं

है। इसी प्रकार जानकारी तथा अज्ञान के कारण भी शुद्धि अशुद्धि मानी जाती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"जानकारी अनजानकारी से शुद्धि अशुद्धि कैसे मानी जाती है।"

भगवान् ने कहा—"जैसे किसी के पुत्र हुआ, उसने जान लिया कि मेरे पुत्र हुआ है तो उसे सूतक लगेंगे। यदि वह घर में न हुआ परदेश में हुआ यद्यपि घर पर उसके बच्चा हुआ है, किन्तु उसने परदेश में सुना नहीं तो उसे सूतक जन्य अशुद्धि न लगेगी। इसी प्रकार घर में कोई मर गया है और हम इस बात से अनभिज्ञ हैं तो हमें तब तक सूतक न लगेगा जब तक सुन न लें। इसी प्रकार वैभव के अनुसार भी शुद्धि अशुद्धि होती है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! वैभव के अनुसार शुद्धि अशुद्धि कैसे होती है?"

भगवान् ने कहा—"जैसे जीर्ण वस्त्र तथा मलिन वस्त्र पहिनना दोष है, किन्तु कोई दरिद्री है, उसके पास फटे तथा मलिन ही वस्त्र हैं, तो उसे फटे वस्त्र पहिनने में दोष न लगेगा, किन्तु जो वैभवशाली है, जिसमें शुद्ध स्वच्छ धुले वस्त्र पहिनने का सामर्थ्य है, फिर भी वह फटे तथा मलिन वस्त्र पहिनता है, तो वह दोष का भागी होता है। शास्त्र का वचन है अमुक तिथि पर अमुक पर्व पर अमुक अवसर पर ऐसा दान करना चाहिये यदि सामर्थ्य रहते वह ऐसा नहीं करता तो दोष का भागी है, यदि देने की सामर्थ्य ही नहीं तो उसे दोष न लगेगा।"

शुद्धि ये जितनी द्रव्य, वचन, संस्कार, काल तथा महत्व आदि की शुद्धि बतायी हैं, ये सब भी देश काल तथा अवस्थादि के अनुसार होती हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! इसे स्पष्ट करें। देश, काल, तथा अवस्था आदि के अनुसार कैसे होती हैं?"

भगवान् ने कहा—"जैसे द्रव्य आदि की शुद्धि बतायी हैं तो ये वहीं लागू होंगी जहाँ हम निर्भय होकर स्वेच्छा से धर्माचरण कर सकते हों। किसी ऐसे दस्युओं के देश में पहुँच गये, जहा प्रतिक्षण प्राणों का ही भय बना रहे, तो वहाँ शुद्धि अशुद्धि का निर्णय इस प्रकार होगा। वहाँ जैसे काम चले वैसे निर्वाह करना होगा। शीत प्रधान देश है वहाँ त्रिकाल स्नान का आग्रह नहीं। वहाँ स्नान के स्थान में मार्जन से भी काम चलेगा। काल के अनुसार शुद्धि अशुद्धि मे भेद हो जाता है जैसे सुतकों मे ग्रहण मे तथा रुग्णावस्था में दूसरा ही शौच होता है। अवस्था के अनुसार भी शुद्धि अशुद्धि होती है। एक ही मनुष्य है बाल्य-काल की अवस्था में उसका शौचाचार दूसरा है, युवावस्था में दूसरा है और वृद्धावस्था में दूसरा है। सब वस्तुओं की शुद्धि भी पृथक् पृथक् होती हैं। बहुत से पदार्थों की शद्धि कालसे, वायुस, अग्नि, मृत्तिका एवं जल से होती है।"

उद्धवजी ने कहा 'काल, वायु, अग्नि, मृत्तिका एवं जल से कैसे शुद्धि होती है ?"

भगवान् ने कहा—'जैसे धान्य है कोई इन्हें छू लो। कोई ले आओ जहाँ वायु लगी तहाँ शुद्ध हो गये'। काष्ठ है इसमें अशुद्धि होती ही नहीं। समय पाकर वायु लगने से शद्ध हो जाता है। भूमि है किसी ने विष्ठा कर दी। मल मूत्र त्याग दिया कुछ काल बीत जाने पर अपनेआप शुद्ध हो जाती है। हाथी दाँत है, उसे शुद्ध कर लिया सूख गया शुद्ध हो गया। शंख की हड्डी है, समुद्र से निकाल लो सूख गयी उसकी दुर्गंधि छूट गयी शुद्ध हो गयी। सुत है जल से धो दिया शुद्ध हो गया। घृत, शहद, दूध, दही आदि रस हैं वायु लगी शुद्ध हो गये। सुवर्ण चाँदी के बर्तन हैं किसी ने जूठे कर दिये, केवल जल से धो देने से ही शुद्ध हो गये उसके लिये मृत्तिका लगाने की भी आवश्यकता

नहीं। सुवर्ण चाँदी के सिक्के हैं वे वायु से ही शुद्ध हो जाते हैं चम हैं, जब तक उसमें रक्त मास लगा है अशुद्ध है। जहाँ उ शुद्ध कर दिया, सूख गया, दुर्गंधि मिट गयी व्यवहार के योग्य व गया। जल का घडा है, जल का सकोरा है पहिले शुद्ध था कि ने पानी पी लिया अशुद्ध हो गया। उसे फिर से अग्नि मे त लो शुद्ध हो गया। शौच का लोटा है जल मिट्टी से मल दि शुद्ध हो गया। इसी प्रकार देश, काल तथा अवस्था के अनुस कहीं जल मृत्तिका आदि एक एक से कहीं कहीं मिलाकर शु होती है। जैसे काठ की कठैली है, उसमें कोई अशुद्ध पदार्थ ल गया तो उसे छील दो। वह शुद्ध हो जायगी। हाथों में दुर्ग युक्त पदार्थ लग गया, मृत्तिका उसे तब तक धोते रहो जब त गन्ध न छूटे गन्ध छूट जाने पर शुद्ध हो गये। कोई वस्त्र है उस कोई अशुद्ध पदार्थ लग गया है उसे जल से धो दो वह शुद्ध जायगा।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! यह तो आप वाह्य शुद्धि वर्णन किया अब आप यह बतावें कि चित्त शुद्ध होने का उपाय है?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! बाहरी शुद्धि भी चित्त शुद्धि लिये ही की जाती है, किसी के वस्त्रों मे मलमूत्र लगा है, तो देखकर चित्त भी बिगड जाता है, अतः बाहरी शुद्धि अत्यावश्य है। चित्त की शुद्धि के लिये एक तो स्नान परमावश्यक है। स्ना करने से चित्त शुद्ध होता है। अतः नियमपूर्वक धर्म सममक स्नान अवश्य करना चाहिये यदि गङ्गादि तीर्थों मे स्नान करने मिले, तब तो पूछना ही क्या?"

चित्त शुद्धि का दूसरा कारण है दान। जो धन कमाकर दान नहीं करते जोड जोडकर रखते ही जाते हैं, उन कृपणों मन मलिन हो जाता है। धन की शोभा दान से ही है। दान

से अन्तरात्मा प्रसन्न होती है, जिनसे अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

तपस्या से भी चित्त शुद्ध होता है अतः यथाशक्ति तप करना चाहिये। जैसे जाड़ों में जाकर अरुणोदय में स्नान करना एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी, प्रदोष तथा रविवार आदि का व्रत करना और भी चातुर्मास्य आदि का व्रत करना। साधारणतया ये तप हैं इनसे भी मनकी मलिनता दूर होती है।

अपनी अवस्था को देखकर उसके अनुसार ही व्यवहार करने से तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान, धर्म पुण्य कर्मादि करने से भी चित्त की शुद्धि होती है। अपने कुलानुसार

संस्कार करने से तथा वेद विहित सस्कारों से भी चित्त की शुद्धि होती है। वर्णाश्रमानुसार सत्कर्म करना भी चित्त की शुद्धि का कारण है। और उद्धव! सबसे बढकर चित्त शुद्धि का कारण है मेरा स्मरण करना। मेरे निरन्तर के स्मरण से चित्त के सभ मल धुल जाते हैं और वह निशुद्ध बन जाता है, अत. ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि सतत मेरा स्मरण बना रहे। यह तो मैं सामान्य शुद्धि अशुद्धि के विषय में कहा अब शुद्धि अशुद्धि के विषय में जो विशेष नियम हैं उन्हे आगे कहूँगा।"

सूतजी कहते हैं "मुनियो! अब भगवान् जो विशेष शुद्धि अशुद्धि का विवेचन करेंगे उसे भी मैं आप से कहता हूँ, आप इस परम उपयोगी प्रसङ्ग को दत्त चित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

कहे हेतु कछु शुद्ध अशुद्धि पदार्थनि मधिमहँ।
द्रव्य, वचन सस्कार, काल, बहु, स्वल्प सबनिमहँ॥
शक्ति बुद्धि अरु वित्त विभव कारन कछु भाखे।
होहिँ दोष गुन, देश काल अनुसारहि राखे॥
स्नान, दान, तपअवस्था, शक्ति, कर्म, सस्कार तैं।
चित्त शुद्ध होवे अवसि, सुमिरन मम पद प्यार तैं॥

शुद्धि अशुद्धि के विशेष नियम

(१२९८)

क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद् दोषोऽपिविधिना गुणः।
गुण दोषार्थ नियमस्तद् भिदामेव बाधते ॥*

(श्री भा० ११ स्क० २१ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

परिज्ञान त मंत्र-शुद्धि कर्म हु अरपन तैं।
देश, काल अरु वस्तु, कर्म, कर्ता, मनु इन तैं।
धर्म शुद्धि महँ हेतु कहे छै ये सब उद्धव।
शुचि तैं होवै धर्म अशुचि तैं अधरम यादव॥
कबहुँ दोष गुन के सरिस, गुन होवैं कहुँ दोष सम।
कह्यो बली सामान्य तैं, अधिक विशेष निगम नियम॥

सामान्य नियम से विशेष नियम बलवान् होता है। जैसे सामान्य नियम है एकादशी के दिन निराहार व्रत करना चाहिये। फिर जहाँ चान्द्रायण का प्रकरण है वहाँ नियम है

*श्री भगवान् उद्धव जी से कह रहे हैं—"उद्धव! कहीं शास्त्र विधिसे गुण भी दोष हो जाता है और कहीं दोष भी गुण हो जाता है। विशेष आज्ञा से सामान्य वचनों द्वारा प्राप्त गुण दोष विभाग का वह विशेष नियम बाध करने वाला होता है।"

कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन ग्यारह ग्रास खाने चाहिये और शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन चार ग्रास खाने चाहिये। न खाने का नियम सामान्य रूप से सभी एकादशियों के लिये है किन्तु ग्यारह और चार ग्रास खाने का नियम केवल पिपीलिका चान्द्रायण में है। चान्द्रायण तो विशेष रूप से किये जाते हैं। अत यह विशेष नियम है, इसने सामान्य नियम को दबा दिया अत पिपीलिका चान्द्रायण में ग्रासांश खाना धर्म हो जाता है। विशेष नियम सामान्य को बाध करके लागू होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब तक तो भगवान् ने सामान्य शुद्धि की बात बतायीं। जब वे विशेष नियम बताने लगे तब उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! मंत्र की शुद्धि कैसे होती है?"

भगवान् ने कहा—'बिना परिज्ञान के मंत्र साधारण अक्षरों के समान हैं। मंत्र को गुरु मुख से श्रवण कर, उसको भली भाँति परिज्ञान कर, तब मंत्र की शुद्धि होती है। वही मंत्र फल दायक होता है। जो मनमानी मंत्र जपा जाता है, उसका फल नहीं होता। ये तो मेरे नाम ही ऐसे हैं, कि जिन्हें उलटा जपो चाहे सुलटा टेढा जपो चाहे सीधा कभी निष्फल होते ही नहीं। शुद्धि अशुद्धि सब कर्मों में देखी जाती है। जो शुद्धि के साथ कर्म किया जाता है, वह धर्म होता है, जो शुद्धि का ध्यान न रखकर अशुद्धता पूर्वक कर्म किया जाता है, वह अधर्म है।"

उद्धवजी ने पूछा—"प्रत्येक कर्म में किन किन बातों पर शुद्धि का ध्यान रखा जाय।"

भगवान् ने कहा—"छै वस्तुओं के शुद्ध होने से धर्म होता है और उन्हीं के अशुद्ध होने से अधर्म हो जाता है।"

उद्धवजी ने पूछा—"वे छै वस्तुएँ कौन सी हैं?"

भगवान् ने कहा—"देखो, उद्धव प्रथम शुद्धि तो देश की चाहिये।

१–देश–जिस देश में कर्म किया जाय, वह म्लेच्छ देश न हो, शास्त्रों में जो निषिद्ध न बताया हो। कर्मों पर देश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अशुद्ध देश में कर्म किये जायँगे, तो उनमें अशुद्धि आही जायगी। क्यों कि उस देश के निवासी अधर्म को ही धर्म मानते हैं, शास्त्र जिन कार्यों को निषिद्ध बताता है उस देश के लोग उन्हीं कार्यों को प्रतिष्ठा का द्योतक समझते हैं। अतः प्रथम देश की शुद्धि पर ध्यान रखना चाहिये। दूसरी शुद्धिका विषय है काल।

२–काल–सभी शुभ कर्म शुभ काल में किये जाने चाहिये। अच्छा योग नक्षत्र, वार करण और मुहूर्त हो। भद्रा न हो। शुभ महीना हो। इसी लिये विवाहादि शुभ कर्म मुहूर्त देखकर शुभलग्न में किये जाते हैं। तीसरे शुद्धि का विषय है पदार्थ।

३–जिस शुभ कर्म में जो पदार्थ प्रयुक्त हों वे शुद्ध हों। अशुद्ध पदार्थों से यज्ञादि शुभ कर्म करने से उनका फल विपरीत ही होता है। अतः पदार्थों की भली भाँति परीक्षा कर के तब उन्हें उपयोग में लाना चाहिये। चौथा शुद्धि का कारण है कर्ता।

४–कर्ता–कर्ता के ही ऊपर तो कर्म का सब फल निर्भर करता है। यदि कर्ता शुद्ध है तो उसका कर्म भी शुद्ध होगा। यदि कर्ता मलिन हृदय का अधार्मिक तथा अन्यायी है, तो उसके किये हुए समस्त कर्म भी अधर्म तथा अन्याय पूर्ण होंगे अतः कर्ता की, शुद्धि पर सबसे विशेष ध्यान देना चाहिये। कर्मों का मूल कर्ता ही है। यदि मूल की ही शुद्धि न होगी तो शाखा पत्र फल मूल कैसे शुद्ध होंगे पाँचवाँ शुद्धि का कारण है कर्म।

५–कर्म–कर्म यदि शुद्ध होगा, तो उसका फल भी शुद्ध होगा। यदि कर्म अशास्त्रीय है तो कर्ता के शुद्ध होने पर भी उसका फल विपरीत होगा अतः कर्म शुद्धि पर ध्यान देना परमावश्यक है। छठा कारण है मंत्र।

६–मंत्र–यदि मंत्र शुद्ध उचारण होगा, तो उसका फल शुद्ध होगा, यदि अशुद्ध प्रयुक्त होगा तो विपरीत फल को उत्पन्न करेगा। इसलिये इन छै के शुद्ध होने से तो धर्म होता है और ये छै अशुद्ध हुए तो उनसे अधर्म होता है। धर्म अधर्म का निर्णय केवल कर्मो से नहीं किया जाता। कहीं ऊपर से धर्म सा दीखने वाला अधर्म हो जाता है और कहीं अधर्म सा दीखने वाला धर्म हो जाता है। जैसे प्राणियों की हिंसा न करना यह परम धर्म है, किन्तु जो आततायी हो, प्रजाको निरन्तर पीडा पहुँचाता हो उसके प्राणों की रक्षा का आग्रह करना अधर्म है। इसके विपरीत हिंसा महा-अधर्म है, किन्तु कोई प्राणियों को पीड़ा देने वाला है, सदा लोक के अकल्याण में निरत रहता हो, उसे मार देना अधर्म नहीं है। प्रत्युत धर्म ही है। इसीलिये कहीं कहीं पर विशेष शास्त्र विधि के कारण गुण भी दोष हो जाते हैं और कहीं दोष भी गुण।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! गुण दोष और दोष गुण क्यों हो जाते हैं?"

भगवान् ने कहा—"पात्र भेद से ऐसा हो जाता है। जैसे घी, दूध तथा दही इनकी अमृत संज्ञा है यदि ये ही ताम्र के पात्र में रख दिये जायँ, तो विष तुल्य हो जायँगे। वेद पढ़ना गुण है, किन्तु उन्हें ही अन्त्यज शूद्रादि अपात्र पढ़ेंगे तो पढ़ना दोष हो जायगा। मांस का व्यवसाय करना, चर्म आदि बेचना ये सब दोष युक्त कार्य हैं, किन्तु इन्हीं कार्यों को चर्म कार या चांडाल करे तो कोई दोष नहीं। उनका तो यह सहज कर्म-पैतृक व्यवसाय-है। इनके अन्य जो करेगा वह पतित हो जायगा।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! पैतृक व्यवसाय यदि सदोष हो, तो भी उसे करते रहना चाहिये।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! व्यवसाय के लिये कोई भी कर्म सदोष नहीं हैं या फिर सभी में कुछ न कुछ दोष है। शास्त्र का

तात्पर्य कर्मों में प्रवृत्त कराना नहीं है वह तो सब प्रकार से कर्मों का त्यागही कराना चाहता है। मेरी सेवा पूजा कथा, कीर्तन आदि कर्म वास्तव में कर्म नहीं है। ये सब तो नैष्कर्म्य हैं व्यवसाय के लिये जो भी कर्म किये जाते हैं सब सदोष हैं। दान लेना कोई अच्छा कार्य थोड़े ही है। प्रजा का शासन करके उससे भाँति भाँति से कर लेना। दंड के द्रव्य से कार्य चलाना ये प्रशसनीय कार्य नहीं हैं। कृषि मे कितनी हिंसा होती है वाणिज्य मे असत्य भाषण करना ही पड़ता है। पशुपालन में भी हिंसा है। इस प्रकार सभी भी कर्म सदोष हैं। यदि प्रत्येक आदमी समाज मे अपना कर्म चुनता रहे तो समाज मे अशांति बढ़ जायगी। धार्मिक भावना लुप्त हो जायगी अर्थ तृष्णा बढ जायगी। कोई किसी का शील सकोच न करेगा। दास गण यदि धर्म समझकर सेवा न करेंगे, तो वे अधिकारों के लिये संघर्ष करते रहेंगे। परस्पर मे प्रेम तथा सहानुभूति का अभाव हो जायगा। अतः जो अपना वशपरम्परा गत व्यवसाय है उसे छोड़ना न चाहिये। अपनी जाति के अनुरूप जो कर्म है, वह स्वरूप से सदोष होने पर भी उसका आचरण करना पतितों के लिये पातक नहीं है।"

जैसे जिनका रेशम बनानेका काम है, लाह बनाने का काम है, मांस तथा रस आदि बेचने का काम है, वे उन्हें छोड़ें नहीं। उनका परम्परागत व्यवसाय है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवान् निषिद्ध व्यवसाय करने से दोष तो लगता ही होगा।"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई! दोष तो परधर्म का आचरण करने मे लगता है। कोई शूद्र है, यदि वह ब्राह्मण का व्यवसाय करता है, तो उसे दोष लगता है। या कोई ब्राह्मण है, वह नीच कर्म करता है, तो पतित होता है, जिसका जो कार्य है उसे दोष लगेगा। जो छत के ऊपर बैठा है, गिरने का भय तो

है, जो भूमि पर ही बैठा है वह क्या गिरेगा। जो तख्त पर सो रहा है वह गिर सकता है, जिसका बिस्तर भूमि पर लगा है वह कहाँ गिरेगा। जिन कर्मों का सम्बन्ध जाति से विहित है वे कर्म उन जाति के लोगों के लिये दोष युक्त नहीं होते। कर्म निवृत्ति के लिये किये जाते हैं। फँसने के लिये नहीं। कर्म करते करते हम नैष्कर्म्य पद को प्राप्त करलें यही सब कर्मों का उद्देश्य होता है। पहले तो लगन से अत्यंत उत्साह के साथ कर्मों को करो फिर उन्हें छोड़ दो जैसे सूर्य नारायण प्रातः काल से मध्यान्ह तक चढ़ते हैं, फिर अस्ताचल की ओर छिपने की तैयारियाँ करते हुए उतरते हैं और छिप जाते हैं। कर्म उपरति के लिये करने चाहिये।"

उद्धव जी ने पूछा—"कर्मों के करने से तो भगवन्! और अधिक रति होगी उनसे उपरति कैसे हो सकती है?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! ससार में जितनी भी प्रवृत्ति हैं सभी परिणाम में दुख देने वाली हैं। कर्मों मे प्रवृत्त होना ही बन्धन में बधना है और कर्मों से उपरत होना ही बन्धन से छूटना है। कोई भी कर्म आरंभ किया उसमें दुःख हुआ उससे मनुष्य को शिक्षा लेनी चाहिये कि ऐसे ही समस्त कर्म दुःख देने वाले हैं। इस प्रकार जो उनके परिणामों से शिक्षा लेता हुआ कार्य करेगा, तो उसका चित्त जिस जिस प्रवृत्ति से उपरत होता जायगा, उस ओर से वह बन्धन मुक्त होता जायगा।"

उद्धवजी ने पूछा—"कर्मों को निवृत्ति से क्या परिणाम होगा?"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई यह तो सर्वथा सीधी बात है कर्मों की प्रवृत्ति से शोक मोह और भय होता है, तथा उनसे निवृत्ति होने पर मोहरहित अशोक तथा निर्भय हो जाता है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! कर्मों की प्रवृत्ति से मनुष्य

को शोक मोह और भय की प्राप्ति कैसे होती है, ये तो पतन के पूर्ण चिन्ह हैं।"

भगवान् ने कहा—"हाँ कर्मों की आसक्ति से पतन ही होता है और कर्मों की निवृत्ति से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। इसका एक क्रम है मनुष्य का जिस विषय में गुण बुद्धि हो जायगी उसमें उसकी आसक्ति हो जायगी। जैसे सब लोगों की धन में गुण बुद्धि है। धनिक कैसा भी व्यभिचारी गुण हीन, निर्दयी, अभिमानी तथा कामी क्रोधी हो, लोग उसका आदर करते हैं। उसका क्या आदर करते हैं, धनका आदर करते हैं। कल वही निर्धन हो जाय, तो सगे सम्बन्धी भी उसकी बात नहीं पूछते। जिनकी दृष्टि में धन श्रेष्ठ था धन में गुण बुद्धि थी धन के कारण ही उसका आदर सत्कार करते थे। जिसकी जिस वस्तु में गुण बुद्धि होगी उसकी उसमें आसक्ति हो जायगी। इसीलिये प्रायः धनिक बड़े कृपण होते हैं। एक एक पैसा करके तो उन्होंने धनका संचय किया है उसमें उनकी आसक्ति हो गयी है, इसीलिये जब तक विनश नहीं हो जाते तब तक धनिक किसी को धन नहीं दे सकते।"

उद्धवजी ने पूछा—"आसक्ति हो जाने में क्या होता है ?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव ! संग या आसक्ति से कामना पड़ता है। जिसमें मनुष्यों की अत्यधिक आसक्ति होती उसे अपने से भरसक पृथक करने की इच्छा न होगी। कोई उसके संकल्प में विघ्न उत्पन्न करता है, तो उस पर मन बिगड़ जाता है। जो व्यवहार हम नहीं चाहते जो हमारी इच्छा से भिन्न व्यवहार करता है उससे मन भेद होता ही है। मन भेद पड़ने से कलह उत्पन्न हो जाती है। कलह से दुःसह क्रोध होता है—" क्रोध सगा भाई है अज्ञान। बिना अज्ञान के क्रोध

की दृष्टि में तो सभी असत्य है, वह किसी पर क्रोध क्यों करेगा। क्रोध तो उसीके हृदय में उत्पन्न होगा जो असत् को सत् समझेगा और कामना से जिसका हृदय कलुषित हो गया होगा। इसलिये जहाँ क्रोध है वहाँ अज्ञान है। क्रोध आने पर अपने पराये का विवेक नहीं रहता। अज्ञान जन्य क्रोध मनुष्य की व्यापक स्मरण शक्ति को ढक लेता है। सद् असद् विवेकिनी बुद्धि आवृत हो जाती ह।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! फिर क्या होता है?"

भगवान् ने कहा—"होता क्या है, स्मरण शक्ति से हीन पुरुष सत् असत् का निर्णय करने में असमर्थ होकर शून्य वत् हो जाता है। फिर उसे स्वार्थ परमार्थ का भी विवेक नहीं रहता। उसका जो यथार्थ साधन है वह भी समाप्त हो जाता है। वह जीवित ही मृतक के समान हो जाता है। जीवन के उसमें कोई भी चिह्न नहीं रहते?"

उद्धवजी ने पूछा—"तो क्या वह स्वास नहीं लेता।"

भगवान् ने हँस कर कहा—"अरे भाई स्वास लेना ही क्या जीवन का चिह्न है? क्या लुहार की धौंकनी स्वाँस नहीं लेती? उसे कौन जीवित कहेगा। समय काटना ही तो जीवन नहीं है। वृक्षों की कितनी बड़ी बड़ी आयु होती है, कितने दिनों तक वे जीवित रहते हैं, किन्तु वे परमार्थ साधन नहीं कर सकते। जो विषय लम्पटता में फँसा है, जिसे आत्मा परमात्मा का विवेक नहीं वह तो जीवित ही मृतक के समान है। इसलिये कर्मों का सेवन करना तो चाहिये किन्तु निवृत्ति भावना से करना चाहिये कि एक दिन हमें इनसे पृथक होना है। जिनकी कर्मों में आसक्ति हो जाती है उनका पतन निश्चित है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! वेदों मे तो कर्मों की बड़ी प्रशंसा है। वहाँ तो बार बार कहा है—"जब तक जोओ अग्निहोत्र आदि शुभ कर्मों को करते ही रहो। वहाँ तो कर्म त्याग की निन्दा की है?"

भगवान् ने उद्धवजी से हँस कर कहा—"उद्धव! वेदों के तात्पर्य को न समझ कर ही लोग उनका अट सट अर्थ करते हैं। वेदों की कर्म प्रशंसा मे एक गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है उसे मैं तुम्हें समझाऊँगा, तुम इस विषय को ध्यान पूर्वक श्रवण करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् अब जैसे कर्मों के रहस्य को समझावेंगे उसे भी मैं आप से कहता हूँ कर्म क्या है अकर्म क्या है, इस विषय मे बड़े बड़े ज्ञानी भी विमोहित हो जाते हैं। जिनकी कर्मों मे जन्म जात आसक्ति है, वेदों का अर्थ भी कर्म परक ही लगाते हैं, किन्तु वेदों का अर्थ क्या है इसे तो भगवान् ही जानते हैं, गीता तथा भागवत ही उनके वेदवाक्यों के भाष्य हैं। उन्होंने अपने श्री मुख से जो कहा है वही वेदों का यथार्थ तात्पर्य है। भक्त उन्हीं की टीका को प्रमाण मानते हैं। भगवान् अपने वचनों की स्वय ही जो व्याख्या करते हैं उसे आप सुनें।

छप्पय

जो जासो कुलधरम दोष नहिँ ताकूँ ता में।
चाहे होइ सदोष पतित ते नहिं हों ग्वामें॥
होइ प्रवृत्त तै दुःख निवृत्ति तै सुख निरभयता।
विषयनि सुखप्रद लख होइ तब तिनि महँ ममता॥
होहि कामना कलह पुनि क्रोध मोह अज्ञान हू।
स्मृति नाश मृतवत् बनै, नसै ज्ञान विज्ञान हू॥

कर्म प्रशंसा श्रेय प्रवृत्ति के निमित्त है

(१२९९)

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचन परम्।
श्रेयो विवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० २१ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

करम बन्ध के हेतु सकामिनि हित वेदनि महँ।
कहे प्रशंसा परक वचन नर फँसिहैं तिनिमहँ॥
दै मीठे को लोभ शिशुनि कटु औषधि प्यावैं।
त्यों श्रुति कहि श्रुत मधुर वचन मुख माँहिँ लगावैं॥
अज्ञ न समुझैं रहसकूँ, सब कछु समुझैं करमकूँ।
हिंसामहँ नित निरत ह्वै, तजैं मोक्ष मुख धरम कूँ॥

वचन कई प्रकार के होते हैं, उनमें रोचक, भयानक, यथार्थ और मिथ्या ये चार प्रकार के प्रधान हैं। रोचक वचन तो वे कहाते हैं, जो प्रवृत्ति कराने को कहे जाते हैं। जैसे बच्चों से कहते

---

*श्री भगवान् उद्धवजी से कह रहे हैं—"उद्धव! पुरुषों के लिये ये जो वेद की फल श्रुतियाँ हैं वे परम पुरुषार्थ प्रतिपादक नहीं हैं, वे तो केवल श्रेय की ओर प्रवृत्त करने के लिये रुचिवर्धक मात्र हैं, जैसे कड़ु औषधि पिलाने को बालकों को मिठाई का प्रलोभन देते हैं।"

हैं, कि तू दूध पीवैगा, तो तू राजा हो जायगा, काजर लगावेगा तो राजा बन जायगा। यहाँ माता पिता का तात्पर्य बच्चे को दूध पिलाने या काजर लगवाने में है। राजा बनने का प्रलोभन उन कामों में प्रवृत्ति कराने के निमित्त है। जैसे मन्दिर में एक दीपक जल रहा था, उसकी बत्ती को खाने को एक चुहिया आई। ज्यों उसने हाथ डाला पीछे से बिल्ली ने उसे पकड़ लिया। भूल से पंजा लगने से बुझती हुई बत्ती और अधिक ऊँची होने से जलने लगी। इसी पुण्य से उसे करोड़ वर्ष स्वर्ग का सुख मिला और अन्त में वह सम्राज्ञी हुई। इस कथा का तात्पर्य इतना ही है, कि मन्दिर मे दीपक जलाना शुभ कार्य है यह जो कथा है यह रोचक वचन है।

इसी प्रकार भयानक वचन होते हैं। बच्चा रात्रि में बाहर जाने को हठ करता है। माता कहती है "बाहर जायगा, तो हौआ पकड़ लेगा।" वास्तव में बाहर कोई हौआ तो है नहीं माता का तात्पर्य डराकर उसे बाहर जाने से रोकने में है। पीने से बचे पानी को भी लेने पर पैर धोने से बचे पानी को पी लेने पर अमुक अमुक नरकों में जाना पड़ता है। ये भयानक वचन हैं इनका तात्पर्य इतना ही है, ऐसे जल को नहीं पीना चाहिये। उस जल को पीने की प्रवृत्ति रोकने को ऐसे वचन हैं। यथार्थ वचन ये हैं—"जैसे धर्म का आचरण करो सुख मिलेगा। माता, पिता, गुरु तथा पूज्य जनों की सेवा से पुण्य होगा। ये यथार्थ वचन हैं। मिथ्या वचन वे कहलाते हैं, जो होने पर भय या स्वार्थवश असत्य कहे गये हों।

वचनों के शब्दों पर ही ध्यान न देना चाहिये सोचना यह चाहिये ये किस भाव से प्रयुक्त किये गये हैं। जो वचनों के भाव को समझकर उनका अर्थ लगाता है वही यथार्थ तात्पर्य को — मता है जो केवल शब्दों के ही तोड़ मरोड़ में अपनी शक्ति

व्यय करता है वह सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब उद्धवजी ने भगवान् से यह बात पूछी कि वेदों में कर्मों की इतनी प्रशंसा क्यों है, तब इसका उत्तर देते हुए भगवान् कहने लगे—"उद्धव! देखो, जो पुरुष स्वभावतः सकाम हैं, कर्मों में आसक्त हैं, उन्हें कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के निमित्त श्रुतियों ने कर्मों की प्रशंसा की है। वहाँ यह तात्पर्य नहीं है कि कर्मों के द्वारा तुम्हें परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी।

उद्धवजी ने कहा—"कैसे भी सही, कर्मोंकी प्रशंसा तो की ही है, यदि श्रुति को कर्म कराना अभीष्ट न होता, तो कर्मों की इतनी बड़ाई क्यों की जाती है?"

भगवान् ने कहा—"श्रुति का तात्पर्य कर्मों में प्रवृत्त करना नहीं है अपितु उनसे निवृत्त कराना ही है। सकामी कर्म संगी पुरुष सीधे कहने से तो कर्मों को छोड़ नहीं सकते। अतः पहिले उन्हें निषिद्ध कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों में लगायेंगे। शुभ कर्म करते करते जब अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, तो उन्हें भी छोड़ही देने का उपदेश देंगे। जैसे कोई बालक है मीठा उसे प्रिय है, किन्तु उसे ज्वर आता है ज्वर में कड़वी ओषधि देनी है। कड़वी वह खाता नहीं। अतः उस कड़वी ओषधि को मिश्री या बतासे में रखकर देते हैं और कहते हैं—"ले यह कैसी मीठी वस्तु है इसे खा ले।" बचा मीठे के लोभ से उसे खा लेता है। माता पिता का अभिप्राय तो उसे कड़वी ओषधि खिलाने में है, मिठाई तो केवल प्रवृत्ति करने के निमित्त है। इसी प्रकार कर्मों की प्रशंसा करके शुभ कर्मों में प्रवृत्त कराना है श्रुति का यथाथ उद्देश्य तो नैष्कर्म्य स्थिति प्राप्त कराना है।"

उद्धवजी ने कहा—"इसे हम कैसे समझें कि श्रुति का तात्पर्य कर्मों से निवृत्ति कराने में ही है।"

भगवान् ने कहा—"तुम तो बुद्धिमान् हो विचार से अनुमान से तुम सोचो। प्यासे के लिये यह उपदेश कोई न देगा, कि प्यासे को पानी पाना ही चाहिये। प्यास में तो पानी की स्वतः ही प्राप्ति होती है। उपदेश तो अप्राप्त वस्तु का दिया जाता है। मांसाहारी को यह उपदेश देना कि मांस खाना चाहिय, यह तो कोई विलक्षण बात नहीं। जिसमें स्वाभाविकी प्रवृत्ति है उसके लिये उपदेश क्या देना। इसी प्रकार प्राणों की ममता तथा अनर्थ रूप कर्म वासनाओं में तो जीवों की जन्म से स्वाभाविक ही रुचि है। आत्मा के लिये अनर्थ रूप इन विषयों को भोगते हुए अपने वास्तविक स्वार्थ को न जानकर जीव नाना योनियों में जन्म लेता है मरता है। इस प्रकार चौरासी लाख योनियों मे भटकता फिरता है। स्वर्ग और नरकों की यातनाओं को सहता हुआ एक योनि से दूसरी योनि में आता जाता रहता है और जन्म, जरा तथा मृत्यु के दुःखों को भोगता रहता है। यह सब होता है कर्मों के फलों के द्वारा इस प्रकार के घोर अन्धकार में पड़े हुए दीन हीन पुरुषों के लिये वेद फिर कर्म करने का आग्रह क्यों करेगा। उसे तो कोई विलक्षण बात कहनी चाहिये न।"

उद्धवजी ने पूछा—"तब भगवन्! ये मीमांसक आदि कर्मों के विषय में इतना आग्रह क्यों किया करते हैं?",

भगवान् ने कहा—"वे लोग वेद के इस मुख्य अभिप्राय को समझ ही नहीं सकते। कर्मों में अत्यधिक आसक्ति होने के कारण अज्ञान उनके विवेक को आवृत्त कर लेता है, वे आपात रमणीय फल श्रुतियों को ही परम फल मान बैठे हैं। पुष्प को ही देखकर प्रलोभित हो जाते हैं। फल की ओर ध्यान नहीं देते। जिन्होंने वेदका भली भाँति मर्म जान लिया है, वे इस भूल भुलैय्यों के चक्कर में नहीं फँसते।

जो अज्ञानी कर्मों में अत्यंत आसक्त हैं, वे दूर से ही

हुए सुन्दर पुष्पों को देखकर विमुग्ध बन जाते हैं। वे कृपण उसी को वृक्ष का सर्वस्व समझकर उसे ही प्राप्त करने दौड़ते हैं। वेदों में कहा है "स्वर्ग की कामना से अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये।" बस, वे स्वर्ग सुख को ही परम पुरुषार्थ मान बैठते हैं। उनका परमसाध्य स्वर्ग ही बन जाता है। उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिये अग्नि से होने वाले यज्ञ यागादि कर्मों में ही वे मुग्ध होकर निरन्तर लगे रहते हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"उन कर्मासक्त पुरुषों की क्या गति होती है?"

भगवान् ने कहा—"दो मार्ग हैं, एक तो धूम मार्ग एक दीप्ति मार्ग। धूममार्ग से जाने वालों को तो स्वर्गादि सुख भागकर फिर पृथिवी पर जन्म लेना पड़ता है, उनका जन्ममरण छूटता नहीं, किन्तु जो दीप्ति मार्ग से जाते हैं, वे विमुक्त हो जाते हैं। ये स्वर्ग को ही सर्वस्व समझने वाले धूममार्ग से जाकर फिर फिर जन्म लेते हैं, फिर फिर मरते हैं वे अपने निज धाम निर्वाण पद से वञ्चित रह जाते हैं इन कर्मासक्तों को मेरे दर्शन दुर्लभ हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! यज्ञ भी तो आप का ही रूप है, फिर ये आपके दर्शनों से वञ्चित क्यों रहते हैं?"

भगवान् ने कहा—"अरे, भाई! मैं तो उनके समीप ही हूँ, सबके अन्तःकरणों में विराजमान हूँ किन्तु वे तो कर्म को ही अपनी सिद्धि का अमोघास्त्र समझते हैं। कामनाओं से उनका अन्तःकरण कलुषित हो जाता है, इसीलिये वे प्राण पोषक पुरुष सबके हृदय कमल में स्थित सबके जनक मुझको नहीं देख पाते। जैसे जिनकी आँखों में मोतिया बिन्दु हो जाता है यद्यपि उनकी आँखें बनी रहती हैं, किन्तु उनपर धुन्ध छा जाने से वे समीप में स्थित पुरुष को तथा अन्य पदों को नहीं देख सकते। वे हिंसा करने में ही प्रसन्न होते हैं। हिंसा प्रधान यज्ञों को करते हैं और

उसी के सहारे मांस खाकर अपने मांस का वढ़ाते हैं जिह्वा लोलुपता वश पशुओं को मारते हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! यज्ञ में पशु वलि करने की तो वेद की आज्ञा है।"

भगवान् ने कहा—"नहीं, भाई! वेद का यह अभिप्राय कभी नहीं है, कि किसी के प्राण ले लो। यज्ञीय कार्य तो चरु पुरोडास चावलों की खीर तथा फल फूलों से भी सम्पन्न हो सकता है। यदि किसी की हिंसा में ही विशेष प्रवृत्ति हो, उसके लिये एक नियम बना दिया है कि वह केवल यज्ञ मे ही करे। इससे एक नियम संयम बना दिया है। हिंसा की आज्ञा नहीं दी है। जैसे किसी को स्वाँस का रोग है, उसे दही खाना मना है, किन्तु रोगी की दही में अत्यन्त रुचि है, तो वैद्य उससे कहता है, एक बार ही दही खा सकते हो, छटांक भर ही खा सकते हो। उसमें मीठा नहीं मिला सकते। खाली दही भी नहीं खा सकते। उसमें सैंधा नमक, हींग भुनी राई, चित्रक तथा भुना जीरा और सोंठ का चूर्ण भी मिलाना होगा। यहा इतने नियम लगाने का अभिप्राय इतना ही है, कि दही हानि कारक है उसे नहीं खाना चाहिये यदि तुम्हारा आग्रह ही है तो इस विधिसे खाने से विशेष हानि न करेगा। वैद्य की आज्ञा का तात्पर्य भी निषेध में ही है। इसी प्रकार वेद जो यज्ञ मे पशु वलिकी आज्ञा देते हैं, वह हिंसा की प्रवृत्ति को रोकता है। ये स्वार्थी विषयी लोग वेद के इस गूढ़ अभिप्राय को तो समझते नहीं, केवल हिंसा करने में निरत हो जाते हैं। यज्ञ को निमित्त बनाकर अपने प्राणों का पोषण करते हैं, अपनी जिह्वा-लोलुपता को शान्त करने के निमित्त देवता, पितर और भूत पतियों के नाम से जीवों का सिर काटते हैं और उनके मांसों से अपनी तोंद को बढ़ाते हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! वे जो भी करते हैं, वेद की

आज्ञा से ही तो करते हैं। उसी प्रकार उनको फल भी मिलता होगा ?"

भगवान् ने कहा— "अरे, भैया ! न तो वे वेद की यथार्थ आज्ञा का पालन ही करते हैं और न उन्हें वैसा फल ही मिलता है। बात यह है, कि वे सकाम होते हैं, सुनने में अत्यत मधुर लगने वाले स्वप्न के सदृश मिथ्या स्वर्ग के सुखों की इच्छा से वे यज्ञों में प्रवृत्त होते हैं। जिह्वालोलुपता वश जीवों की हिंसा करते हैं। प्रतिष्ठा के लिये धन व्यय करते हैं। भोगों लिये मन ही मन संकल्प करके थोडे व्यय में अधिक लाभ चाहते हैं। उन्हें अधिक लाभ तो होता नहीं, उलटे वे अपने मूल धन को भी खो बैठते हैं। वे कामनाओं से कलुषित होने के कारण स्वर्गादि लोकों को तो प्राप्त कर नहीं सकते, हाँ उन हिंसामय यज्ञों मे धन को व्यर्थ नष्ट अवश्य कर देते हैं। अपनी भावना के अनुसार किसी देवता को भले ही प्राप्त करले मुझ गुणातीत को तो वे पा ही नहीं सकते।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! देवादिक भी तो आपके ही अंश हैं, जब वे देवताओं को प्राप्त कर लेते हैं, तो आपको क्यों न पा सकेंगे।

भगवान् ने कहा—"यह संपूर्ण संसार त्रिगुणात्मक है, मैं गुणातीत हूँ। सात्विक उपासना करने वाले इन्द्रदिक देवताओं को प्राप्त कर सक्ते हैं रजो गुणी उपासना वाले यक्ष राक्षसों को तथा तमोगुणी उपासना वाले भूत, प्रेत, पिशाच डाकिनी साकिनी आदि तमोमय देवों को प्राप्त कर सक्ते हैं। मैं तो दोनों गुणों से परे हूँ अत ये मुझ गुणातीत की उपासना नहीं कर सक्ते।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! जन ऐसे यज्ञ करने वाले वेदों की आज्ञानुसार ही यज्ञ करते हैं, तो वेदों मे तो आपने स्पष्ट आज्ञा दी है, एक मात्र त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

अहिंसा ही परम धर्म है। एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है। फिर वे इन आप के वेद वाक्यों को क्यों नहीं मानते ?"

हँसकर भगवान् ने कहा—"अरे, भैया ! उन्हें तो काल्पनिक स्वर्ग दिखाकर विमूढ़ बना दिया गया है। वे तो सोचते हैं--"यहाँ हम यज्ञों में बलिदान देकर देवताओं का यजन करेंगे। बड़े बड़े व्यय साध्य यज्ञ यागों को करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। वहाँ विमानों में विहार करेंगे अप्सराओं के साथ आनंद लूटेंगे अमृत का पान करेंगे स्वर्गीय नन्दन काननों में घूमेंगे। दिव्याति दिव्य भोगों को भोगेंगे। इसके पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर इस लोक में पवित्र श्रीमानों के उच्चकुलों में जन्म लेकर बड़े भारी कुटुम्बी बनेंगे। फिर यज्ञ करेंगे, फिर स्वर्ग जायेंगे।" इस प्रकार के चित्र विचित्र श्रुत मधुर वचनों से उनका चित्त चञ्चल हो जाता है। उनकी उन कल्पित भोगों में आसक्ति हो जाती है। वे अपने सम्मुख किसी को कुछ समझते ही नहीं। अभिमान के आधिक्य के कारण वे अत्यन्त उद्दण्ड हो जाते हैं, उन्हें मेरी बात अच्छी ही नहीं लगती। वेद के सिद्धान्त वाक्यों पर उनका चित्त ठहरता ही नहीं। वेदों के अस्पष्ट वचनों के जाल में ही फँसे रह जाते हैं।"

उद्धवजी ने पूछा--"भगवन्! आपने वेद में ऐसे मोहक वचन क्यो कह दिये, जिससे लोग भ्रममें पडजाते हैं। लोगों में नानामत भेद उत्पन्न हो जाते हैं। कोई कर्म को ही श्रेष्ठ बताता है, कोई उपासना पर ही बल देता है और कोई ज्ञान को ही सर्व श्रेष्ठ बताता है।"

हँसकर भगवान् ने कहा—"उद्धव ! वेदों में कर्मकाण्ड भी है, उपासना भी है और ज्ञानकाण्ड भी है। ये तीनों ही काण्ड ब्रह्मात्म विषय हैं। अर्थात् ब्रह्म और आत्मा की एकता का ही निरूपण करते हैं। किन्तु मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने विषय का वर्णन स्पष्ट शब्दों में नहीं किया है। रहस्य के साथ वर्णन किया है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवन् ! रहस्य के साथ-छिपकर-अस्पष्ट वर्णन क्यों किया है ? खोलकर स्पष्ट वर्णन क्यों नहीं किया ?"

हँसकर भगवान् ने कहा—'स्वारस्य के लिये रहस्य का वर्णन किया है। देखो, पति पत्नी में कोई छिपाव नहीं दुराव नहीं। फिर भी पत्नी जब घूँघट की ओट में से एक आँख से पति को देखती है, तो उस दर्शन में स्वारस्य होता है मधुरमा तथा सरसता होती है। इसी प्रकार मन्त्र द्रष्टा ऋषि परोक्ष प्रिय होते हैं। उनका भी दोष नहीं। यथार्थ बात तो यह है मैं स्वयं परोक्ष प्रिय हूँ, मुझे संकेत से कही हुई बात अच्छी लगती है। संकेत की बात को अधिकारी ही समझते हैं अनधिकारी उससे वञ्चित ही रह जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मवाद भी रहस्यमय विषय है। ब्रह्म के दो रूप हैं। शब्द ब्रह्म और पर ब्रह्म। शब्द ब्रह्म को समझ लेने पर ही पर ब्रह्म का ज्ञान होता है।"

उद्धवजी ने पूछा—'भगवन् ! शब्द ब्रह्म क्या है, कृपा कर के मुझे शब्द ब्रह्म का रहस्य समझाइये।

भगवान् ने कहा—"वेद ही शब्द ब्रह्म है। इसक

उत्पत्ति हुई यह मैं अत्यंत संक्षेप में तुम्हें समझाता हूँ तुम सावधान होकर इस गूढ़ विषय को—श्रवण करो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब जिस प्रकार भगवान् शब्द ब्रह्म के विषय में बतावेंगे, उसको मैं आप से कहूँगा।

छप्पय

स्वर्ग समान अमान मधुरश्रुत स्वरग आदि सुख।
तिनिहित हिंसा करै अन्त महँ पावे बहु दुख॥
गुन मय देवनि भजे गुननिमहँ ही फँसि जावैं।
ते निरगुन परमात्वतत्व मोकूँ नहिँ पावैं॥
सुनि करमनिकी प्रशंसा, गूढ़ रहस नहिँ धरहिँ हृय।
श्रुति परोक्ष वरनन करैं, है परोक्ष अति मोइ प्रिय॥

शब्द ब्रह्म निरूपण

(१३००)

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥*

(श्री भा० ११ स्क० २१ अ० ३६श्लो०)

छप्पय

शब्द-ब्रह्म दुरबोध पार सब ताहि न पावैं ।
पश्यन्ती अरु परा मध्यमा त्रिविधि बतावैं ॥
नाद रूप तैं प्रथम फेरि बनि बरन सुहाये ।
बरन छन्द बनि गये भेद बहु मुनिनि बताये ॥

गायत्री, उष्णिक, बृहति, जगती, त्रिष्टुप् पंक्ति सब ।
अतिच्छद अत्यष्टि ये, अति जगती बीराट तब ॥

मनुष्य ज्ञान के लिये बाहर भटकता है। यहाँ जा वहाँ जा, इस ग्रन्थ को पढ़ इसी में भटकता रहता है। भीतर की ओर देखता नहीं, अपने आप में विचार करता नहीं। सम्पूर्ण गूढ़

---

*श्रीभगवान् उद्धवजी से कहते हैं—"उद्धव! शब्द ब्रह्म अत्यन्त ही दुर्बोध है, वह प्राण, इन्द्रिय और मनोमय है तथा समुद्र के सदृश अनन्तपार, गम्भीर और दुर्विगाह्य है।

ज्ञान तो अपने भीतर ही छिपा है। मनुष्य जो शब्द बोलता है उसी पर ध्यान दे उसीकी उत्पत्ति का अन्वेषण करे, तो उसे सृष्टि का समस्त रहस्य अपने आप समझ में आ जाय। इस अपने शरीर की रचना को ही समझ ले तो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाय। ब्रह्माण्ड कोई बाहर थोडा ही है, उसको रचना हम अपने आप करते हैं। हमारे विचार ही ब्रह्माण्ड का रूप रख लेते हैं। जाला मकरी से पृथक् थोडा ही है। अपने भीतर से सूत्र निकालकर वह जाला बनाती है और इसमे विहार करती है। यदि वह उसे निगलना भूल जाय, तो जाले में फँस जायगी। मनुष्य भीतर से इस बाह्य जगत् को बना तो लेता है। किन्तु उसे समेटना भूल गया है। उसे यह विस्मरण हो गया है कि हमारे भीतर का ही मूर्त रूप बाहर प्रकट हो गया है। यही अज्ञान है यही अविद्या है। यही मोह है यही माया है। यदि मनुष्य भीतर देखना आरंभ करे। स्रोत का पता लगाले, तो फिर बन्धन क्या दुःख क्या ?

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! जब उद्धव जी ने भगवान् से शब्द ब्रह्म के विषय में पूछा, तो भगवान् कहने लगे—"उद्धव ! शब्द ब्रह्म का समझना सरल काम नहीं वह अत्यत दुर्बोध है ?"

उद्धव जी ने पूछा—"भगवन् ! दुर्बोध क्यों है ?

भगवान् ने कहा—"क्योंकि वह अपार है। जैसे एक नदी है, उसके किनारे खड़े होते हैं तो हमे उसका दूसरा किनारा दिखायी देता है। इस पार से उस पार तैरकर सरलता से चले जाते हैं। किन्तु समुद्र के किनारे खडे होते हैं तो उसका आरपार दिखायी ही नहीं देता उसमे कूद पडें तो भटकना ही होता है। हाँ युक्ति से पार होना चाहें तो हो भी सकते हैं। यदि बाहुबल से ही तैरना चाहें तो बडी कठिनता हो जाती है। समुद्र अनंत है। उसका अंत दिखायी नहीं देता, वह परम गम्भीर है। बहता

नहीं। उसे युक्ति पूर्वक कठिनता से-पोतों द्वारा—पार किया जा सकता है। इसी प्रकार यह शब्द ब्रह्म समुद्र के समान गम्भीर और दुष्पार है।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! इस शब्द ब्रह्म को किसने इतना बढ़ा दिया। कैसे इसका इतना अधिक विस्तार हो गया?"

भगवान् ने कहा—'इसका इतना विस्तार मैंने ही किया है। मेरी अनन्त शक्ति है। मैं बृहत् हूँ इसीलिये मुझे ब्रह्म कहते हैं। मैं सर्वत्र हूँ। इसीलिये मेरा नाम सर्व व्यापक है। मैं स्वयं ही शब्द ब्रह्म के रूप में प्राणियों के हृदय में व्यक्त होता हूँ।"

उद्धवजी ने पूछा—"शब्द ब्रह्म के रूप से भगवन्! आप कैसे व्यक्त होते हैं?"

भगवान् ने कहा—'जैसे मैं नित्य हूँ वैसे ही शब्द भी नित्य है। जैसे मेरा नाश नहीं होता वैसे ही शब्द का कभी नाश नहीं होता जैसे मैं क्षर न होने से अक्षर कहाता हूँ वैसे ही शब्दों की अभिव्यक्ति अक्षर कहलाती है। जैसे मैं अव्यक्त हूँ वैसे ही प्रथम शब्द भी अव्यक्त रहता है। जैसे मैं निर्गुण से सगुण हो जाता हूँ, वैसे ही शब्द भी प्रथम निर्गुण होता है और फिर प्राण तथा स्पर्श के सहारे सगुण बन जाता है। जैसे मैं धर्म को समझाने को अवतार लेता हूँ, वैसे ही भावों को व्यक्त करने शब्द ब्रह्म का अवतार होता है। जो अव्यक्त और व्यक्त के भेद को समझता है वही इस दुष्पार शब्द ब्रह्म का पार पा सकता है।"

उद्धवजीने पूछा—"भगवन्! अव्यक्त से शब्द व्यक्त कैसे होता है?"

भगवान् ने कहा—"देखो, शब्द ब्रह्म के चार रूप हैं। एक तो प्राणमय रूप है, सबसे परे वाणी होने से उसका नाम 'परा' है। उसकी अभिव्यक्ति मूलाधार चक्र में होती है। दूसरी वाणी मनोमय है, उसे बड़े बड़े योगी गण समाधि में देखते हैं। उसका

साक्षात्कार करते हैं। इसीलिये योगी उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। वह हृदय कमल मे रहता है। एक बीच की इन्द्रियमय वाणी है। जिसमे देवता गण बातें करते हैं बीच की वाणी होने से वह 'मध्यमा' कहाती है। वह कठ देश मे रहती है। एक सबसे निकृष्ट चौथी वाणी है, जो मुख के द्वार से बाहर निकल जाती है। इस वाणी से मनुष्यादि प्राणी बोलते हैं। इन वाणियों मे से तीन तो अव्यक्त रूप से भीतर ही छिपी रहती हैं केवल एक वैखरी वाणी ही व्यक्त होकर प्रकट होती है। मनुष्य उस वाणी के भी रहस्य को समझ लें तो ससार सागर से सहज मे ही पार हो जायँ। क्योंकि यह वैखरी वाणी भी तो भीतर से ही आती हैं। परा वाणी का ही तो यह व्यक्त रूप है। परा ही पश्यन्ती के रूप मे परिणित हो जाती है। पश्यन्ती ही मध्यमा बन जाती है और मध्यमा ही कठ से मुख द्वार से प्रकट होकर वैखरी रूप धारण कर लेती है। जो पराके के भेद को जानते हैं वे ही पडित हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! परा ही वैखरी बनकर कैसे प्रकट होती है। इसका क्रम क्या है।"

भगवान् ने कहा—"देखो, शब्द तो नित्य है। वह मेरा स्वरूप है। प्रकृति से महत्तत्व और महत्तत्व से अहकार से पचभूतों में सर्व प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। सर्वप्रथम शब्द की अभिव्यक्ति आकाश में ही हुई। इसीलिये आकाश का शब्द गुण बताते हैं आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई और शब्द से स्पर्श की इसलिये वायु में शब्द गुण तो आकाश से आया और स्पर्श अपना निजी गुण रहा। अब वायु से तेज की उत्पत्ति हुई और स्पर्श से रूप की उत्पत्ति हुई इसी प्रकार तेज से जल की जल से पृथिवी की उधर स्पर्श से रूप की रूप से रस की और रस से गध की। यहाँ यह सब कहने का अभिप्राय इतना ही है गध पुत्र का पिता रस है पितामह रूप है प्रपितामह! स्पर्श है और वृद्ध प्रपितामह

शब्द है। जितने गुण हैं सब का आदि पुरुष शब्द है। आकाश उसके रहने का घर है। सर्वप्रथम शब्द नाद रूप से आकाश में प्रकट हुआ।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन्! शब्द का नाद रूप कौन सा है।"

भगवान् ने कहा—"घोर जंगल में बैठ जाओ जहाँ चारो ओर आकाश ही आकाश हो, चित्त को स्थिर करो। तो आकाश में सॉइ सॉइ ऐसा शब्द सुनाई देगा। वही नाद ब्रह्म है। पशु पक्षी या अन्य शब्दों के मिलने से वह स्पष्ट न सुनायी दे तो कानों के छिद्रों को उँगलियों से या रुई आदि से बन्द कर लो तो वह शब्द और स्पष्ट सुनाई देने लगेगा। योगी उसी शब्द पर मनको स्थिर करके नादानुसन्धान किया करते हैं।"

उद्धवजी ने पूछा—"फिर उस अव्यक्त नाद शब्द से शब्दों का रूप कैसे बना?"

भगवान् ने कहा—"हाँ—इसे बहुत सूक्ष्म रूप से विचार करो। उस नाद की ध्वनि को ध्यान पूर्वक सुनो। जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है। या यों कहो पिंड ने ही ब्रह्माण्ड का रूप रख लिया है। पिंड में हृदयाकाश है। उस हृदयाकाश में ही नाद ब्रह्म प्रकट होता है। जैसे कमल की पोली डंडी में अति सूक्ष्म मकरी के सूत से भी सूक्ष्म तन्तु उत्पन्न हुआ। कमल नाल के वे तन्तु जैसे कमल के फूल को उत्पन्न करते हैं ऐसे ही उस सूक्ष्म-नाद ने स्थूल शब्द को उत्पन्न किया। मकड़ी के पेट में तन्तु बहुत सूक्ष्म अव्यक्त रूप से उत्पन्न होता है। जब उसी को मुख द्वारा वह उगली है तो उसी तन्तु का व्यक्त जाला बना लेती है। रेशम के कीड़े के पेट में बहुत सूक्ष्म सूत होते हैं। यदि उन्हें वह पेट में ही रखे तो न बँधे। किन्तु जब उन्हें वह व्यक्त करता है और निरन्तर मुख से सूत को उगलता रहता है तो शनैः शनैः

वह विस्तार होने से बँध जाता है। इसी प्रकार प्राणियों के अन्तः करण में प्रथम नाद अव्यक्त सूक्ष्म था। वह शब्द प्राणमय था। प्राणों के अधिष्ठातृदेव भगवान् हिरण्य गर्भ का जो अमृत मय है तथा वेदमय हैं। उनका मन से संयोग हुआ। मन का स्वभाव संकल्प करना है। संकल्प से काम की उत्पत्ति होती है। स्नेह से रति होती है। दोनों का संयोग होने से सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं। पुरुष के मन में पहिले सूक्ष्म वासना होती है। वह बढ़कर काम के रूप में हो जाती है रतिमती पत्नी के संयोग होने से वह व्यक्त और स्थूल होकर संतान के रूप में सब के सम्मुख आ जाती है। इसी प्रकार हृदयाकाश मे नाद रूप उपादान कारण से संकल्प विकल्पात्मक मन रूप निमित्त कारण द्वारा शब्द उत्पन्न हो गये। वह जो सूक्ष्मनाद था, ध्वन्यात्मक था। कानों को उँगलियों से बन्द करके सुनों तो उस नाद में 'ओं' ऐसा शब्द ही सैभस्त शब्दों का बीज है। प्राण तथा उसके अधिष्ठातृ देव का जब मन से स्पर्श हुआ तो उस ओंकार से कुछ शब्द उत्पन्न हो गये। स्पर्श से हुए इसलिये उन शब्दों की संज्ञा स्पर्श है।"

उद्धवजी ने पूछा—"भगवन् स्पर्श शब्द कौन कौन हैं ?"

भगवान् ने कहा—"क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, और म इन्हीं शब्दों की स्पर्श संज्ञा है।"

उद्धवजी ने पूछा—'क्या भगवन्! सब इतने ही हैं ?"

भगवान् ने कहा—"सब शब्दों का चार संज्ञायें हैं। जो बोलने में सहायक हैं और स्वयं शोभित होते हैं। वे स्वर कहलाते हैं, जो भावो के अभिव्यंजक हैं व्यजन कहलाते हैं। व्यंजन भी तीन प्रकार के हैं। जिनमें मन और प्राण का अधिक स्पर्श होता है, वे क से म तक स्पर्श संज्ञक है। जो अन्तःस्थ हैं, जिनमे स्पर्श कम हैं। उन 'य, र, ल, और व, की अन्तःस्थ संज्ञा है जिनमें ऊष्मा

अधिक हैं उन 'श, ष, स, और ह, की ऊष्मा संज्ञा है, तथा अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः इन सोलह की स्वर संज्ञा है। शब्द के बोलने के लिये सबसे प्रथम तो आकाश की आवश्यकता है, आकाश के बिना शब्द का उच्चारण नहीं हो सकता। दूसरे स्पर्श की और वायु की आवश्यकता है। जहाँ वायु नहीं स्पर्श नहीं वहाँ शब्द नहीं। संसार की समस्त भाषायें, समस्त वाक्य इन्हीं शब्दों से व्यक्त होंगे। कोई भी ऐसा वाक्य नहीं जो इन शब्दों के बिना बोला जा सके। इन सब शब्दों के पृथक् पृथक् स्थान हैं। जैसे अ, क, ख, ग, घ, ङ, और ह ये कण्ठ से बोले जाते हैं, इनके बोलने में जिह्वा की विशेष आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार कोई दाँतों से ओष्ठ से और कोई विशेष कर जिह्वा से बोले जाते हैं। ये अक्षर ही मिलकर वाक्य बनते हैं फिर इनसे छन्दों का निर्माण होता है। तीन अक्षरों वाला ओंकार सब से छोटा छन्द है। उत्तरोत्तर चार चार अधिक वर्णों वाले बहुत से छन्द बन गये। इन छन्दों से विचित्र भाषाओं के रूप में वृद्धि को प्राप्त होने वाली वैखरी वाणी मेरे ही द्वारा बढ़ती है। मैं ही असंख्यों भाषाओं में असंख्यों छन्दों के रूप में परिणित हो जाता हूँ। अन्त में सब फिर मुझमें ही लीन हो जाते हैं। मैं स्वयं ही शब्द ब्रह्म रूप से विस्तृत हो जाता हूँ और स्वयं ही उसका उप संहार भी कर लेता हूँ।"

उद्धवजी ने पूछा—"आपने कहा कि चार चार अधिक वर्ण होने से बहुत सी छन्दें बन जाती हैं, वे छन्दें कौन कौन हैं ?"

भगवान् ने कहा—"छन्द तो वैदिक लौकिक बहुत हैं, उनमें से गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती और विराट ये छन्दें बहुत प्रसिद्ध हैं। जैसे वर्णों का व्याकरण शास्त्र पृथक् है वैसे ही छन्दों का भी छन्द शास्त्र पृथक्। इसका यदि विस्तार किया जाय, तो

प्रसङ्ग बहुत बढ़ जायगा। यहाँ मेरा कहने का तात्पर्य इतना ही है, कि शब्द ब्रह्म दुष्पार और दुर्बोध है, मैंने ही स्वयं इसे बढ़ाया है। मनुष्य जो बोले उसका रहस्य समझ ले, स्वर से बोले, उदात्त, अनुदात्त का विचार करे। यदि एक भी शब्द शुद्ध रीति से उच्चार करे। तो वही स्वर्ग लोकमें कामधेनु के समान सुखप्रद होता है। छन्दों के रूपमें ही कर्म, उपासना और ज्ञान का निरूपण वेदोंमें किया है।"

उद्धवजी ने कहा—"भगवान्! समस्त झगड़ा तो इसी बात को लेकर होता है। कोई किसी ऋचाको कर्मकांड परक मानते हैं। दूसरे उसे उपासना परक तथा अन्य उसे ही ज्ञान कांड परक बताते हैं। इसका निर्णय कौन करे?"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! यह मेरी बृहती वाणी कर्मकाण्ड में किसका विधान करती है। उपासना काण्ड में किसे कहती है तथा ज्ञान काण्ड में किसका अनुवाद करती हुई क्या विकल्प करती है यह बड़ा ही गूढ़ विषय है। इसे लोक में मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई भलीभाँति जानता ही नहीं।"

उद्धवजी ने कहा—"प्रभो! मुझे आप ही शिक्षा दें। यह बृहती वाणी किसका विधान करती है। किसका वर्णन करती है। किसके विषय में विकल्प करती है।"

भगवान् ने कहा—"उद्धव! मेरे वेद वचनों का एकमात्र उद्देश्य मेरी प्राप्ति कराना है। वेदों के आदि में। मध्य में। अन्त में तथा सर्वत्र मेरा ही वर्णन है। अनेक रूपों में मेरा ही कथन किया गया है। कर्मकाण्ड की श्रुतियाँ जो भी विधान करती हैं। वे मेरा ही करती हैं। उपासना परक श्रुतियाँ उपास्य रूप से मेरी ही प्रशंसा करती हैं मेरा ही वर्णन करती हैं और ज्ञानकांड में आकाशादि रूप से प्रथम मेरा ही आरोप किया जाता है और फिर अन्त में श्रुति मेरा ही बाध करती है। सारांश यह है कि

सब में सर्वत्र एकमात्र मैं ही मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। शब्द ब्रह्म मेरा ही रूप है मेरा ही कथन करता है और मुझे ही भेद-भाव रहित सिद्ध करता है। सम्पूर्ण वेद का यही अर्थ है। यही भाव है। यही अभिप्राय है तथा यही यथार्थ अर्थ है। वेद एक मुझे ही अद्वय बताता है। मेरा ही आश्रय लेकर यह जो भेदभाव दिखायी देता है उसे माया मात्र बताता है। वह कहता है संसार में यह जो नानात्व दिखायी देता है। यह कुछ भी नहीं है। इस दृश्य प्रपंच में जितने पदार्थ उसे दिखायी देते हैं। सब के विषय में शंका करता है। क्या अन्नमय कोश ब्रह्म है? फिर कहता है नहीं यह ब्रह्म नहीं है।'फिर कहता है। प्राणमय है। मनोमय है। सभी को नहीं है। यह नहीं है ऐसा कहते कहते चुप हो जाता है। जहाँ चुप हो जाय वही मेरी सिद्धि है। वेद भी मेरा परोक्ष रूप से वर्णन करता है। क्योंकि मैं परोक्ष प्रिय हूँ। भेद की चरम सीमा पर पहुंचाकर वेद शान्त हो जाता है। अर्थात् संकेत से कह देता है। भेद की सीमा को पार करके पहुँच जाओ वही ब्रह्म है। कथोपकथन तो भेद में ही संभव है। अभेदमें तो कहना सुनना सब समाप्त हो जाता है। इसलिये जिज्ञासु को सर्व प्रथम तत्वज्ञान करना चाहिये।

उद्धवजी ने पूछा—"भगवान्! तत्व ज्ञान क्या?"

भगवान् ने कहा—"तत्व कहते हैं सार को। जैसे दुग्ध का तत्व है घृत। इसी प्रकार इस संसारमें बहुत सी वस्तुएँ हैं। पहिले तो दार्शनिक रूपसे इसकी मीमांसा करे। जब तत्व का निर्णय हो जाय। तो फिर इन सब तत्वों में परम तत्व क्या है इसे विचार करे। सर्वप्रथम तो यह संसार ही दीखता है प्रथम तो इसी का विवेचन करना चाहिये।

उद्धवजी ने कहा—"भगवन्! तत्वोंके विषय में तो ऋषियोंमें भी बड़ा मतभेद है। आपने तो पीछे अट्ठाईस तत्व बताये हैं।

ईश्वर, जीव, महातत्व और अहङ्कार चार तो ये पृथिवी, जल तेज, वायु और आकाश पॉच ये। इस प्रकार चार और पाँच नौ हुए। पॉच ज्ञानेन्द्रिय, पॉच कर्मेन्द्रिय और एक मन इस प्रकार ग्यारह ये हुए। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श पॉच ये तन मात्रायें सत्व, रज और तम तीन ये गुण। इस प्रकार नौ, ग्यारह, पॉच और तीन सब मिलाकर अट्ठाईस तत्व हुए। उनका आप ने वर्णन किया मैंने उन्हें ध्यानपूर्वक श्रवण किया, किन्तु कोई छब्बीस ही तत्व बताते हैं, कोई कहते हैं पच्चीस ही तत्व हैं, कोई सत्रह तत्व बताते हैं तो कोई सोलह कोई कहते हैं तेरह ही तत्व हैं। कोई ग्यारह ही कथन करते हैं, किसी के मत मे नौ ही तत्व हैं कोई सात ही बताते हैं, कोई छै ही सिद्ध करते हैं कोई कहते हैं नहीं केवल चार ही तत्व हैं यह तो बडी गडबड की बात है। साधक किसके वचन को सत्य माने, किसके वचन को असत्य माने। एक दो सख्या का मतभेद हो, तो उसका किसी प्रकार समाधान किया भी जा सकता है। किन्तु जहॉ इतने मतभेद हो, वहॉ जिज्ञासु क्या करे। कहॉ चार कहॉ अट्ठाईस। आकाश पाताल का अन्तर है। प्रभो! तत्व ज्ञानी ऋषियो मे इस विषय पर इतना मतभेद क्यो है, वे किस अभिप्राय से इतनी भिन्न भिन्न सख्यायें बताते हैं। एक ही विषय पर उनमें इतना मतभेद क्यों है?"

यह सुनकर भगवान् हँस पडे और बोले—"उद्धव! यह मतभेद ऊपर से ही दिखायी देता है। ध्यान पूर्वक विचार करो। तो इस मतभेद में कुछ भी सार नहीं। सब एक ही बात को भिन्न भिन्न रूपों से कह रहे हैं। सौकहले या पॉचबीसी। बात एक ही है। अच्छी बात है, मैं तुम्हे इस मतभेद के रहस्य को समझाता हूँ। तुम सावधानी के साथ इस विषय को श्रवण करो।"

सूतजी कहते हैं--"मुनियो ! जिस प्रकार भगवान् तत्वों का समन्वय करेंगे उस विषय को मैं आगे कहता हूँ।

छप्पय

छन्दनि में ही भये व्यक्त सब भाव जगत के।
कर्म उपासन ज्ञान काड प्रकटित इतउत के ॥
आदि मध्य अरु अन्त कह्यो हो ही वेदनिमहँ।
हैं सब मायामात्र पदारथ सत् हौं इनिमहँ ॥
तत्वनि को निश्चय करौ, परमतत्व कूँ पुनि लहौ।
उद्धव बोले तत्व कै, यदुनन्दन मोतें कहौ ॥

———

॥ श्री हरिः ॥

श्रीब्रह्मचारीजी की कुछ अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँसे मिलती हैं।

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में, ५६ खण्ड छप चुके हैं) प्रति खण्डका मूल्य १।) , दस आना डाकव्यय पृथक् । १६।) में एक वर्ष के १२ खण्ड डाकव्यय रजिस्ट्री सहित।

२—श्री भागवत चरित—लगभग १००० पृष्ठकी, सजिल्द मूल्य ५))

३—बदरीनाथदर्शन—बदरीनाथजीपर खोजपूर्ण महाग्रन्थ, मूल्य ५)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० ३४५ मू० २।।।)

५—मतवाली मीरा—भक्तिका सजीव साकार स्वरूप, मूल्य २)

६—नाम सङ्कीर्तन महिमा—भगवनाम संकीर्तन के सम्बन्धमें उठने वाली तर्कों का युक्ति पूर्ण विवेचन। मूल्य ।।)

७—श्री शुक—श्रीशुकदेवजीके जीवनकी झाँकी (नाटक) मूल्य ।।)

८—भागवती कथाकी बानगी—(आरंभके तथा अन्य खण्डोंके कुछ पृष्ठोंकी बानगी) पृष्ठ संख्या १२५ , मूल्य ।)

९—शोक शान्ति—शोक शान्ति करने वाला रोचक पत्र (पृ० ६४) इसे पढकर अपने शोक संतप्त परिवारको धैर्य बँधाइये। मूल्य ।-)

१०—मेरे महामना मालवीयजी और उनका अन्तिम सदेश—मालवीयजीके जीवनके सुखद संस्मरण। पृष्ठ १३० ; मूल्य ।)

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते हैं ? इसका शास्त्रीय विवेचन। पृष्ठ सं० ७५ मूल्य ।-) पाँच आना

१२—प्रयाग माहात्म्य—प्रयाग के सभी तीर्थों का वर्णन, मूल्य -)

१३—वृन्दावन माहात्म्य—मूल्य -)

१४—राघवेन्दुचरित-(भागवतचरितसे ही पृथक् छापा गया है) मूल्य ।(-

१५—प्रभुपूजा पद्धति—भगवान्‌की पूजा करनेकी सरल सुगम पद्धति मूल्य -)।।

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग।